दहेज दावानल

मानसी परिचय माला
(तृतीय पुष्प)

दहेज दावानल

लेखिका : डॉ. उषा गोयल

परियोजना निदेशक एवं संपादक : डॉ. इन्दिरा कुलश्रेष्ठ

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

दिसम्बर 1991
पौष 1913

आवरण : रीता चड्ढा

मूल्य : रु०. 8.50

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा-288 शगुन कम्पोजर्स द्वारा लेज़र टाइप सेट होकर प्रिंट ओ-बाइड, 394 छत्ता लाल मियां दरियागंज, नई दिल्ली 110002 द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

जीवन एक सुखद अनुभूति है। इसे भरपूर जीने के लिये यह नितांत आवश्यक हो जाता है कि हम बच्चों में यह क्षमता उत्पन्न करें कि वे अतीत की गहराइयों में झांक कर पिछली भूलों को दुहराए बिना वर्तमान की राह में स्थिर कदमों से चल कर सुनहरे भविष्य की ओर बढ़ सकें। इस सामर्थ्य को, इस क्षमता को विकसित करने का एक सशक्त माध्यम है, अर्थपूर्ण तथा उद्देश्यों के तारों से जगमगाती हुई शिक्षा। शिक्षा एक साधना है और इस सा ना को सही रूप से पूरा करने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि बच्चों में पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त भी कुछ पढ़ने की, कुछ जानने की ललक हो। और उनकी इस इच्छा की पूर्ति होती है – सहायक पठन सामग्री अथवा बाल साहित्य द्वारा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 का ऐक महत्वपूर्ण कदम है। महिलाओं के लिये समानता के अवसर प्रदान करना व उन्हें सक्षम व समर्थ बनाना। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद के महिला अध्ययन एकक में एक परियोजना 1983–84 में आरंभ की गई थी जिसके अंतर्गत 14–18 आयु वर्ग के बच्चों के लिए सहायक पठन सामग्री प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया था। इस परियोजना के अतंर्गत 1984 में दो पुस्तकें प्रकाशित की गई, – "हिन्दी कथा लेखिकाओं की प्रतिनिधि कहानियाँ" जिसके प्रधान सम्पादक थे जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के प्रो. (डॉ.) नामवर सिंह और सम्पादक थे डॉ. रामजन्म शर्मा।

दूसरी पुस्तक अंग्रेजी में थी – "वीमेन एंड लाइफ" जिसमें सुश्री प्रतिभा नाथ ने छोटी–छोटी कहानियों के माध्यम से नारी संबंधी नये मूल्य स्थापित करने का प्रयास किया था।

1986–87 में इस परियोजना को महिला अध्ययन विभाग की प्रवाचक डॉ. इंदिरा कुलश्रेष्ठ को सौप दिया गया जिन्होंने इस परियोजना का प्रारुप ही बदल दिया। अब इस परियोजना के अंतर्गत "मानसी परिचय माला" नामक श्रृंखला आरंभ की गई है। इस योजना के तीन पुष्प "बेगम हज़रत महल", (खंड काव्य), "ऐनी बेसेंट" (जीवनी) और "दहेज दावानल" (गद्य) – नेहरू जन्म शताब्दी के अवसर पर भारत के बच्चों को सौपे जा रहे हैं। हमें विश्वास है, बच्चे इनसे लाभान्वित होंगे।

इन पुस्तकों को बच्चों के स्तर के लिए लिखने में हिन्दी की विदुषी कवयित्री तथा जोधपुर विश्वविद्यालय की हिंदी विभाग की भूतपूर्व अध्यक्ष प्रो. (डॉ.) रमा सिंह, प्रख्यात लेखिका तथा आकाशवाणी, इलाहाबाद की महिला कार्यक्रमों की भूतपूर्व प्रोड्यूसर श्रीमती शान्ति मेहरोत्रा तथा राष्ट्रीय महिला व बाल विकास संस्थान में कार्यरत (डॉ.) उषा गोयल ने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। मैं उन्हें इन सुंदर रचनाओं के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ।

इस परियोजना को सजा–संवार कर एक नयी श्रृंखला का रूप देने का कार्य डॉ. इंदिरा कुलश्रेष्ठ ने किया है, जो अब इसकी निदेशक तथा सम्पादक भी है। अनके इस सफल प्रयास के लिए मैं परिषद की ओर से उन्हें भी बधाई देता हूँ।

आपकी टिप्पणियों, विशेष रूप से बच्चों की टिप्पणियों की हमें प्रीतक्षा रहेगी।

डा. के. गोपालन
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद

आमुख

कभी–कभी मैं सोचती हूँ, आखिर साहित्य क्या है ? क्यों पढ़ते हैं हम किताबें ? क्यों हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे पढ़ें – ढेर सारी किताबों की दुनिया में स्वतंत्र विचरण करें ? जब जब मेरे मन ने यह प्रश्न उछाला है , मेरे विवेक ने एक ही उत्तर दिया है – साहित्य उस भाषा को कहते है जिसमें अर्थ की अनेक परतें होती हैं। साहित्य के दो विशेष कार्य हैं – सदंर्भ प्रस्तावित करना और भावनाओं को अभिव्यक्त करना ।

दूसरा प्रश्न जो मुझे प्रायः झकझोरता रहता है वह यह है कि आखिर-कार बाल–साहित्य से हमारा तात्पर्य क्या है ? इसकी क्या विशेषतायें है जो इसे साहित्य की एक अलग ही श्रेणी में स्थान देती है ? मैं समझती हूँ कि बाल साहित्य का सृजन करने वाले लेखकों के सामने एक विशिष्ट उद्देश्य होता है कि प्रत्येक बच्चे को इसके माध्यम से स्वाध्याय की ओर प्रेरित करके अधिक से अधिक शिक्षित बनाया जा सके । यहां शिक्षा से तात्पर्य अक्षर ज्ञान से नहीं है । यहां तो शिक्षा का अर्थ है बालक के मर्म व उसकी आत्मा को सुसंस्कृत बनाना और उसके लिए कुछ ऐसे मूल्य हैं, जो हम उन्हें देना चाहते हैं । जहां तक बच्चों के व्यक्तिगत विकास का संबंध है, पुस्तकों का, विशेष रूप से उनके लिए लिखी गई पुस्तकों का एक महत्वपूर्ण स्थान होता है । यही वह माध्यम है जिसकी नींव पर उनका चरित्र, उनका आचरण, उनका ज्ञान और उनके विचार स्थापित होते हैं। जीवन उनके लिए एक ऐसी अनुभूति बन जाता है जिससे उन्हें आदर्शों का, सौन्दर्य का, और भावनाओं का बोध होता है । और यदि साहित्य में यह गुण हैं, तो क्या शिक्षाविदों का यह कर्तव्य नहीं हो जाता है कि बच्चों को केवल 'सर्वोत्तम' ही दे सके ?

समाज एक ऐसी संस्था है जो नारी और पुरुष दोनों से मिल कर ही बनती है । वे एक दूसरे के पूरक हैं, सुख दुख के भागीदार है, और एक ही रथ के दो पहियों के समान हैं। गाड़ी कहीं रुक न जाये, कदम कहीं

डगमगा न जायें, इसके लिये आवश्यक है कि दोनों में प्रेमभाव, सामंजस्य और व्यक्तिगत स्वतंत्रता और समानता बनी रहे ।

महिलाओं ने भी देश के विकास मे, स्वतंत्रता संग्राम में, साहित्य में, कला में, विज्ञान, तकनीकी और चिकित्सा के क्षेत्र में, अंतरिक्ष की यात्रा में, पर्वतारोहण आदि में पुरुषों के समान ही भाग लिया है । फिर क्या कारण है कि जन्म लेते ही बेटी एक बोझ और बेटा एक उपलब्धि का द्योतक हो जाता है ? राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद में 1983–84 में इसी असमानता को दूर करके स्त्री पुरुष समानता के मूल्यों को बच्चों तक पहुंचाने के आशय से सहायक पठन सामग्री प्रकाशित करने की योजना बनाई गई थी । इस योजना के अंतर्गत दो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

इस योजना का कार्यभार मुझे १९८५–८६ में सौंपा गया । आज इसी के अंतर्गत ''मानसी परिचय माला'' की श्रृंखला के तीन पुष्प हम बच्चों को भेंट कर रहे हैं।

'बेगम हजरत महल', एक खंड काव्य है जिसे सरल किंतु मार्मिक भाषा में लिखा है विदुषी कवियत्री डॉ. रमासिंह ने। मुझे विश्वास है कि क्रांति की अद्‌भुत लौ जो बेगम ने प्रज्वलित की थी, वही हमारी स्वतंत्रता का आधार है, यह हमारे बच्चे समझ सकेंगे ।

'ऐनी बेसेंट' की जीवनी की रचयिता हैं सुश्री शान्ति मेहरोत्रा जिनकी कलम से भावनाओं की सरिता बह निकली है और मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि बच्चे इसे पढ़कर जीवन को भरपूर, सोद्‌देश्य जीना सीखेंगे।

''दहेज दावालन'' की रचयिता है डॉ. उषा गोयल जिन्होंने इस निर्मम प्रथा से बच्चों को परिचित कराने का अनुपम प्रयास किया है ।

इन तीनो की लेखिकाओं ने इस श्रृखंला को पूरा करने में अपना बहुमूल्य समय व सहयोग दिया है, जिसके लिए मैं व्यक्तिगत रूप से उनकी आभारी हूँ।

इन पुस्तकों पर विशेष रूप से बालक बालिकाओं की प्रतिक्रियाओं की हम प्रतीक्षा करेंगे।

इन्दिरा कुलश्रेष्ठ

उषा गोयल

डा. श्रीमती उषा गोयल, विकास प्रभाग, राष्ट्रीय जन सहयोग महिला विकास कार्यों के साथ सन् 1957 से सम्बद्ध हैं। कुछ वर्ष उत्तर प्रदेश सरकार के साथ ग्रामीण विकास में असिस्टेन्ट डवेलपमेन्ट ऑफिसर के पद पर कार्य करने के बाद उन्होंने नगर समुदाय सेवा विभाग, नगर निगम, दिल्ली के अर्न्तगत-शहरी समुदाय की विकास योजनाओं को कार्यान्वित किया।

समाजशास्त्र में एम.ए. करने के बाद इन्होंने सन् 1975 में कलकत्ता विश्वविद्यालय से काम-काजी महिलाओं पर शोध कार्य प्रस्तुत कर पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की।

इन्होंने रिसर्च स्टडीज, एस.एन.डी.टी. यूनिवर्सिटी बम्बई, व सेंटर फॉर वुमेन्स स्टडीज़, नई दिल्ली में महिला विकास सम्बन्धी शोध कार्य किये। इसके अतिरिक्त इन्होंने महिला विकास सम्बधी कई राष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लिया।

वर्ष 1989 में इनकी एक पुस्तक 'ट्रेनिंग स्कीम्स फॉर वुमेन इन दी गर्वमेन्ट आफ इन्डिया' प्राकाशित हुई है। यह अध्ययन महिला एवं बाल विकास विभाग, मानव संसाधन मंत्रालय द्वारा प्रायोजित किया गया था। उसके अतिरिक्त 1988 में भी उनकी पुस्तकें 'पायोनियर विमेंस ऑरगेनाइजेशन इन बॉम्बे' व 'नेशनल स्पेशलाइज़्ड एजेन्सी : सेन्ट्रल वेलफेयर बोर्ड' प्रकाशित हुई है।

आजकल ये महिला विकास प्रभाग, राष्ट्रीय जनसहयोग एवं बाल विकास संस्थान में असिस्टेंट प्रोजेक्ट डाइरेक्टर हैं।

सम्पर्क : बंगला न. C-2, कर्बला लेन,
सफदरजंग हवाई अडडे के सामने
नई दिल्ली—110003

अनुक्रम

अध्याय–1

दहेज क्या है ?

अध्याय–1

दहेज क्या है ?

दहेज क्या है ?

भारतवर्ष ने पिछले तीन दशकों मे अभूतपूर्व प्रगति की है । इतना अधिक गरीब और अविकसित होते हुए भी भारत ने विज्ञान व टेक्नोलोजी के क्षेत्र में विश्व मे अपना छठा स्थान बना लिया है । यह हम सबके लिये गौरव का विषय है । किंतु वैज्ञानिक प्रगति के साथ समाज में कुछ कुरीतियाँ भी बड़ी तेजी से बढ़ती जा रही हैं। दहेज प्रथा ऐसी ही एक बुराई है जो दिन पर दिन भयंकर रूप लेती जा रही है । यह प्रथा जो कभी समाज के कुछ वर्गों में प्रचलित थी वह अब एक महामारीकी तरह लगभग सभी वर्गों व धर्मों में फैलती जा रही है । अब यह न केवल उत्तरी भारत में है । वरन् भारत के अन्य दक्षिणी, पूर्वी व पश्चिमी प्रदेशो मे भी इस कुरीति ने जड़ें पकड़ ली हैं। इसकी पकड़ से न गॉव छूटा है न शहर । लगभग प्रतिदिन देश के किसी न किसी कोने से दहेज के कारण एक न एक बेकसूर नादान बहू का अपने प्राणों की आहुति देने का समाचार मिलता है। यह प्रथा न केवल नारी के प्रति असम्मान है बल्कि समस्त मानव जाति के लिये कलंक है । दहेज प्रथा की रोकथाम के लिये सन् 1961 में एक कानून लागू किया गया था किंतु फिर भी दहेज का लेना व देना दिनों दिन बढ़ता जा रहा है ।

विवाह दो आत्माओ का एक पवित्र बंधन माना जाता था । जिसके बाद स्त्री व पुरुष साथ साथ धार्मिक, आर्थिक व सामाजिक कर्तव्यों का पालन करने के लिये गृहस्थ धर्म में प्रवेश करते थे । आज यह स्थिति नहीं रही है । दहेज प्रथा के कारण विवाह की पवित्रता धूमिल होती जा रही है । कुछ वर्ग विवाह को एक व्यापार मानने लगे हैं। वर पक्ष विवाह संबंध स्थापित करने से पूर्व लड़की के रूप व गुणों से अधिक महत्व लड़की के परिवार की आर्थिक सम्पन्नता को देते है । वे देखते हैं कि लड़की के पिता कितने धनी हैं। उनके पास कितना रुपया पैसा है, कितनी सम्पत्ति है, कितना बड़ा कारोबार है, आय के क्या–क्या साधन है आदि । इसके अतिरिक्त वे लड़की की धनोपार्जन की क्षमता, उसके नाम चल व अचल सम्पत्ति भी देखते है। विवाह संबंध तय करते समय वर पक्ष लड़की के पिता से दहेज की मॉग करते हैं। चाहे लड़की धनोपार्जन/नौकरी/व्यवसाय आदि करती हो। वे दहेज में नकद रूपया, गहने, कपड़े, फर्नीचर, घर का सामान, बिजली के आधुनिक उपकरण, मनोरंजन का सामान, सवारी के साधन आदि के साथ वर वधू के विदेश

भ्रमण के खर्चे आदि तक की भी माँग करते है। यह माँगें कुछ हजार रुपये से लेकर कई लाख रुपये तक की होती है । बड़े–बड़े उद्योगपतियो में यह राशि कई करोड़ रुपये तक पहुंच जाती है ।

विवाह के पूर्व रखी गई कुछ माँगे तो विवाह संपन्न होने पर समाप्त हो जाती है, किंतु कुछ माँगे इसके बाद भी वर्षों तक चलती रहती है। विवाह के बाद हर छोटे बड़े सामाजिक व धार्मिक त्यौहार पर, शिशु जन्म पर, परिवार में अन्य उत्सव, विवाह आदि के अवसरों पर भी लड़की के ससुराल वाले नित्य नई–नई माँगे पेश करते हैं। लड़की के माता–पिता लड़की को ससुराल में सुखी देखने की इच्छा से लड़के वालों की सभी माँगें अपनी क्षमता से अधिक पूरी करने की कोशिश करते है। किंतु कभी कभी सभी माता–पिता सभी मांगें पूरी करने में समर्थ नहीं होते । उनके पास इतने अधिक साधन नही होते और परिवार के अन्य सदस्यों का बोझ भी होता है । ऐसी स्थिति में लड़की को ससुराल में अनेक यातनाओं का सामना करना पड़ता है । उसके सास ससुर उसे खरी खोटी सुनाते हैं,अन्य संबंधी ताना देते है। यहां तक कि पति भी इस विवाद में सम्मिलित होकर अपने परिवार वालों के साथ हो जाता है । वह भी पत्नी की उपेक्षा व भर्त्सना करने लगता है । पति व ससुराल के अन्य सदस्य इन मांगों को पूरा कराने के लिये उस पर तरह–तरह के दबाव डालते हैं। वे उसे डाँटते हैं, डराते-धमकाते है, कहीं–कहीं तो वह लडकी की जान लेने की धमकी भी देते है।

हमारे समाज में लड़कियों को बचपन से ही यह शिक्षा दी जाती है कि विवाह के बाद उनका निर्वाह केवल पति के घर में ही है अन्यत्र नहीं। अतः पति के घर में दुख हो या सुख, उसे चुपचाप सहते रहना ही उसका धर्म है । लड़की को यह भी आभास रहता है कि पति के घर से संबंध विच्छेद करके नारी को कानूनी हक भले ही मिल जाये किंतु सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं मिल सकेगी। यदि वह सामाजिक प्रतिष्ठा की परवाह किए बिना घर छोड़कर जाने का निर्णय लेती भी है तो उसके पास जाने के लिये कोई ठिकाना नहीं होता । उसे मालूम होता है कि पिता व परिवार के अन्य संबंधी उसे धिक्कारेंगे, दोषी ठहरायेंगे और पुनः पति के घर लौट जाने को कहेंगे । संबधियों के अतिरिक्त उसे किसी ऐसे स्थान की जानकारी नहीं होती, जहां वह स्वयं का समाज के असामाजिक तत्वों से सुरक्षित रख सके । सरकार व सामाजिक संगठनों के प्रयास से

अब कुछ ऐसी संस्थाएं स्थापित की गई हैं, जहां घरेलू अत्याचारों से पीड़ित स्त्री सम्मानित व आत्मनिर्भरता का जीवन व्यतीत कर सकती है।

अतः घर की नाजुक आर्थिक स्थिति से परिचित होते हुए भी वह ससुराल वालों की माँगे अपने माता–पिता के समक्ष रखने का साहस जुटाती है । उसे मालूम होता हे कि ये माँगें तब ही पूरी हो सकेगी जब उसके छोटे भाई बहनों के खाने कपड़े व पढ़ाई के खर्चे में से कटौती की जायेगी और बाहर से कर्ज माँगा जायेगा। जैसे तैसे वह इसकी चर्चा अपने माता पिता से करती है । माता पिता पुत्री को ससुराल में सुखी देखने के मोह में सब कठिनाइयों को झेलते हुए ससुराल वालों की सब माँगे भरसक पूरी कर देते हैं और लड़की को सहर्ष ससुराल उसके पति के घर जहां वे अपनी पुत्री का उचित स्थान मानते हैं, भेज देते हैं। ससुराल वाले अपनी माँगी हुई वस्तुएं प्राप्त करके बेहद खुश होते हैं। किंतु एक प्रकार की माँगे पूरी हो जाने से उनकी माँगों का अंत नही हो जाता । मौका पाते ही वे फिर नई माँगे पेश कर देते हैं।

समस्या विकट तब हो जाती है जब लड़की के माता पिता उसकी ससुराल वालों की बार बार की माँगें पूरी नहीं कर पाते । माता–पिता लड़की को ससुराल खाली हाथ भेज देते हैं। ससुराल वालों को जब यह मालूम होता है कि बहू उनकी माँगे पूरी कराये बिना ही उनके घर लौट आई है तो वे उसकी भरसक भर्त्सना करते हैं, अत्याधिक अपमान करते है और अधिक से अधिक शारीरिक व मानसिक पीड़ा पहुंचाते हैं। उसके साथ घर की नौकरानी का सा व्यवहार किया जाता है । यहां तक कि कभी कभी उसे उचित खाना व कपड़ा भी नहीं दिया जाता । ऐसा नहीं है कि बहुओं के साथ ऐसा व्यवहार केवल गरीब परिवारों में ही किया जाता हो । आर्थिक रूप से सम्पन्न और समाज में उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त परिवारों में भी बहू के साथ ऐसा सलूक करते देखा गया है । आश्चर्य तो यह है कि आर्थिक रूप से आत्म निर्भर, नौकरी पेशा, कामकाजी महिलाओं के साथ भी इसी प्रकार का कठोर व्यवहार किया जाता है । उन्हें केवल एक दुधारू गाय समझा जाता है । उनका वेतन किसी न किसी ढंग से छीन लिया जाता है और काम के स्थान पर आने–जाने के लिये केवल न्यूनतम किराया खर्च दिया जाता है । उनका अपनी स्वयं की आमदनी पर भी कोई हक नहीं होता और न ही वे उसे अपनी इच्छानुसार व्यय कर पाती है ।

ऐसी स्थिति में उसका पति भी उससे विमुख हो जाता है वह या तो मूक बनकर रह जाता है या ताड़ना देने में अपने परिवार वालों का साथ देता है । लड़की अपने ही घर में दुखी रहने लगती है ।धीरे–धीरे वह शारीरिक व मानसिक रूप से इतना टूट जाती है कि वह अपना जीवन समाप्त करने का विचार मन में संजोने लगती है। ससुराल वाले उसे जीवन का अंत करने में बढ़ावा देते है और उसे उकसाते हैं। लड़की या तो अपनी मानसिक दुर्बलता के कारण स्वयं आत्म–हत्या कर लेती है या ससुराल वाले उसका गला घोंटकर, गड्ढे में गाड़ कर या जलाकर उसकी हत्या कर देते हैं। एक वधू का अंत करके ही वे अपने पुत्र के लिये दूसरी पत्नी व दूसरा दहेज लेने के हकदार बन सकते है। वधू की मृत्यु को स्वाभाविक मृत्यु या दुर्घटना घोषित करके ससुराल वाले कानूनन गुनाह व उसकी सजा से मुक्त हो जाना चाहते हैं। पुलिस भी अपने परंपरागत ढाँचे में स्त्री के ऊपर किए गए अत्याचारों को घरेलू मानकर अधिक ध्यान नहीं देती । किंतु अब यह स्थिति धीरे धीरे बदल रही है । सामाजिक व कानूनी दबाव के कारण, अब पुलिस ऐसी घटनाओं के प्रति अधिक सचेत है । कई ऐसे केसों में पुलिस की तत्परता के कारण ही दोषी लोगों को सज़ा मिली है । पिछले कुछ वर्षों से इस कुरीति के प्रति समाज में अधिक चेतना जागृत हो रही है । कुछ सामाजिक संस्थाएं व महिला संगठन समाज सुधार व नव चेतना से प्रभावित होकर अपराधी को दोषी ठहराने व दंडित कराने का प्रयत्न करते है ताकि समाज में इस प्रकार के अपराध बार बार न हों और लोगों को कानून का डर बना रहे । बहुत सी महिला संस्थाएं विभिन्न माध्यमों से महिलाओं पर किए जाने वाले अत्याचारों के खिलाफ़ आवाज उठा रही हैं, जिससे सामाजिक चेतना जागृत हो रही है । सरकारी एवं गैर सरकारी संचार माध्यम भी इस चेतना से प्रभावित होकर दहेज प्रथा का विरोध कर रहे है। इसके अतिरिक्त दहेज कानून 1961 में जो अपनी कमियों के कारण प्रभावशाली नही हो सका था। संशोधन किया गया है ताकि दहेज लेने व देने वालों को उचित रूप से दंडित किया जा सके । दहेज के कारण उत्पन्न हुए मुकदमों को निपटाने के लिये कुछ अदालतें भी बना दी गई हैं। इतना सब होते हुए भी दहेज के कारण बहुओं की मृत्यु की संख्या बढ़ती जा रही है।

हर लड़की/बहू का दहेज की माँग पर यही अंत होता हो, ऐसा नहीं है । कुछ ऐसे साहसिक माता पिता व लड़कियाँ भी हैं जो इस प्रथा का विरोध करने का आत्म-बल रखते है। विवेकशील माता पिता बेटी के ससुराल वालों की आये दिन की अनुचित माँगे पूरी नही करते । वे अपनी बेटी को ससुराल में अन्याय सहने के लिये छोड़ नहीं देते। परिवार के अन्य सदस्यों की तरह उसकी देखभाल करते हैं। उन्हें आत्म निर्भर बनाने का प्रयास करते है। उनमें आत्म विश्वास उत्पन्न करते है ताकि वे अपना शेष जीवन दृढ़ता से जी सकें । ऐसे माता–पिता समाज की रूढ़ियों जो यह संदेश देती हों कि "स्त्री का पति ही उसका देवता है', पति के घर से उसकी अर्थी ही निकलेगी'' . आदि की परवाह नहीं करते ।

कुछ लड़कियाँ भी बहुत साहसी होती हैं। वे नहीं चाहती कि माता–पिता दहेज की अन्यायपूर्ण माँगों को पूरा करके उनका विवाह करें या किसी आर्थिक कठिनाई में पड़ें । अत: वे माता पिता को ऐसा करने से रोकती हैं। वे आत्म निर्भर होकर जीवन व्यतीत करना अधिक श्रेष्ठ समझती हैं।दहेज के लालची पति व उसके परिवार में विवाहित जीवन व्यतीत करने से अधिक वे अविवाहित जीवन व्यतीत करने का निर्णय लेती हैं और माता पिता को इसके लिये आश्वस्त करती है । वे अपने व्यवहार व मानसिकता में इतना परिवर्तन लाती हैं कि माता – पिता के लिये वही बेटी एक बोझ न बन कर एक सम्बल बन जाती है । विवाह के पश्चात की स्थिति में बेटी पति एवं ससुराल वालों से नाता तोड़ने का निश्चय कर लेती हैं और ससुराल वालों की अनुचित मांगों को पूरा करने से माता–पिता को रोकती हैं। ऐसी स्थिति में अनेक परिवार लड़की व उसके माता पिता की दृढ़ता के सामने झुकते हुए देखे गये हैं। वे अपनी भूल स्वीकार कर लेते है और सम्मान पूर्वक वधू को अपने घर ले जाते हैं। वहां साहसी एवं स्नेहशील लड़कियों को अगाध प्रेम व सम्मान मिलते देखा गया है।

क्या दहेज प्रथा पूर्व कालीन है ? नहीं, ऐसा नही है । वैदिक काल में दहेज प्रथा के कोई संकेत नहीं मिलते । वैदिक शास्त्रों के अनुसार दहेज

लेना व देना दोनों ही वर्जित था । उस काल की कुछ जातियों में वधू शुल्क देकर विवाह किया जाता था । उस प्रकार के विवाह को वेद में असुर विवाह कहा गया है और इसे वर्जित किया गया है । इसी प्रकार महाभारत में कहा गया है कि जो अपने पुत्र का बेचता है या पुत्री के दाम ग्रहण करके उसे देता है, वह नर्क में जाता है । धर्मशास्त्र दहेज देने या लेने की स्वीकृति नही देते । अतः दहेज की जब कोई धार्मिक मान्यता ही नहीं है तब वह अवश्य ही हिंदू समाज के विघटन के काल में प्रारंभ हुआ होगा । यह प्रथा इस रूप में अधिक पुरानी नहीं लगती । दहेज के कारण स्त्री की मृत्यु तो बहुत ही कम समय की बात लगती है। या हो सकता है कि इसकी इतनी चर्चा न हुई हो । विवाह के समय वधू को कुछ उपहार दिए जाते थे । अर्थर्वेद में राजघराने की एक राजकुमारी का विवाह में 100 गायें लाने का वर्णन है । इसी प्रकार रामायण में सीता विवाह का वर्णन करते हुए बताया गया है कि सीता अपने विवाह में 100,000 गायें, गर्म कपड़े, अनगिनत रेशमी वस्त्री, सुंदर सजे हुए हाथी, घोड़े रथ, अनेको नौकर, बांदियां एवं ढेरों अन्य उपहार लाई थीं। यह सब उस काल में ऐच्छिक था और उसके लिये कोई माँग नहीं थी। दहेज प्रथा का उदगम कब हुआ इस संबंध में शोध की आवश्यकता है ।

हिंदू धर्म के अनुसार कन्या को दान स्वरूप माना गया है । वैदिक विवाह विधि में कन्या को दान में दिया जाता है । इस विधि के अनुसार पिता या कोई अन्य संरक्षक विवाह मंडप कन्या को वर के लिये दान में देता है । दान से पूर्व कन्या को विभिन्न वस्त्रों एवं आभूषणों से सजाया जाता है । कन्या दान जल विसर्जन की सांकेतिक विधि से किया जाता है। तत्पश्चात मंत्रोच्चारण के साथ वर कन्या को स्वीकार करता है और कन्या के पिता को वचन देता है कि वह उसकी कन्या का धर्म अर्थ के कार्यों में कभी साथ नहीं छोड़ेगा ।

कन्यादान की परंपरा वैदिक विवाह रीति में अब भी उसी प्रकार चली आ रही है यद्यपि कुछ शिक्षित वर्ग कन्या को दान की वस्तु नहीं मानते । माता–पिता पुत्री को दान में देने से पूर्व उसके लिये सुंदर वस्त्रों एवं आभूषणों का प्रबंध करते हैं। सर्व प्रकार के वस्त्रों एवं आभूषणों से

सुसज्जित कर कन्यादान करना माता–पिता अपना धर्म समझते हैं। ऐसा लगता है कि समय बीतते बीतते कन्या के साथ दान में दी जाने वाली वस्तुओं का दायरा भी बढ़ गया है और उसमें अनेक वस्तुएँ जैसे, फर्नीचर, घर का सामान, बर्तन, नकद रूपया व अन्य प्रकार के उपहार भी सम्मिलित हो गये हैं। अब यह हो रहा है कि जितना अधिक सम्पन्न परिवार होता है वह उतना ही अधिक दहेज देता है। अधिक दहेज धीरे धीरे प्रतिष्ठा का मापदण्ड बन गया है । जो जितना अधिक दहेज देता है, उसको समाज में उतना ही ऊँचा दर्जा मिलता है । इसी प्रकार लड़की जितना अधिक दहेज लेकर ससुराल जाती है उसका उतना ही अधिक सम्मान उस घर में होता है । अधिक दहेज लेकर कुछ लोग अपने से ऊँचे परिवार में अपना संबंध जोड़ लेते हैं। इस प्रकार वे समाज के एक निम्न वर्ग से ऊँचे उठकर उच्च वर्ग में स्थान बना लेते हैं। समाज में उनका दर्जा ऊँचा माना जाने लगता है ।

वर व उसके माता–पिता तो सारा दहेज प्राप्त कर फूले नहीं समाते। वे बड़ी शान से दहेज की वस्तुओं को अपने संबंधियों और मित्रगणों को दिखाते हैं और गौरव का अनुभव करते हैं । उनके अचेतन मन में एक यह भावना भी घर कर लेती है कि उन्हें दहेज के रूप में जो कुछ मिला है वह उनके पुत्र के मूल्य के अनुरूप है यानि उनका पुत्र उतना ही स्वस्थ, सुंदर सुशील है कि यदि कोई वर अथवा उसके माता पिता दहेज की माँग नहीं करते या दहेज लेने से मना करते हैं तो अन्य संबंधी यह समझते है कि अवश्य ही वर में कोई खोट या कमी होगी, अन्यथा कहीं कुछ और दाल में काला है ।

दहेज वर पक्ष के लिये पारिवारिक अशांति का कारण भी बन जाता है, जब वधू यह महसूस करने लगती है कि उसके पति के घर की अधिकतर अमूल्य वस्तुएं उसके दहेज में आई हैं और परिवार की आर्थिक स्थिति उसके पिता से निम्न है तो उसे एक प्रकार का अभिमान हो जाता है । वह बात बात में समय असमय पति व ससुराल वालों को अपमानित करने का प्रयत्न करती है । इस प्रकार घर में क्लेश प्रारंभ हो जाता है पति के मन में हीन भावना उभरने लगती है । उसे यह बात

कचोटती है कि घर की अमूल्य वस्तुएं जुटाने में उसका अपना पुरुषार्थ नहीं वरन् पत्नी के पिता का धन लगा है ।

हमारा समाज पुरुष प्रधान समाज है यहां पुत्र के जन्म पर खुशियां मनाई जाती है पुत्री के जन्म पर नहीं । बल्कि लड़की के जन्म का समाचार सुनकर घर का वातावरण बोझिल हो जाता है। विवाह के बाद पुत्री अपना घर छोड़कर पति के घर जाती है,पुत्र नहीं । पुत्र ही पिता को तर्पण दे सकता है पुत्री नही । वंश का नाम भी केवल पुत्र के नाम से चलता है । सभी संपत्ति पुरुष के नाम होती है चाहे उसे संचित करने में स्त्री का कितना भी बड़ा योगदान क्यों न हो। सम्भवतः स्त्री जाति के प्रति भेदभाव को दृष्टिगत रखते हुए शास्त्रकारों ने ''स्त्री धन'' का प्रावधान रखा था । स्त्री धन में वह सब सामान सम्मिलित होता था जो स्त्री को विवाह के समय अपने माता पिता व संबंधियों से मिलता था और बारात के समय पति, सास–ससुर या उनके संबंधियों से भेंट स्वरूप मिलता था । इस धन पर स्त्री का पूर्ण अधिकार होता था और बिना उसकी सहमति के इस धन का उपयोग अन्य कोई, चाहे पति ही क्यों न हो, नहीं कर सकता था । यह एक प्रकार से स्त्री के लिये आर्थिक सुरक्षा की व्यवस्था थी । प्रायः इसी विचार से प्रेरित होकर माता–पिता आजकल भी अपनी पुत्री को विवाह के अवसर पर विभिन्न प्रकार के उपहार, नकद रूपया, जेबर, कपड़े व अनेक प्रकार की घर के प्रयोग की वस्तुएं देते हैं। किंतु आज पूर्व की स्थिति नहीं रही। देखने मे आता है कि विवाह पश्चात इस ''स्त्री धन'' पर स्त्री का कोई अधिकार नहीं रहता। दहेज में आई सभी वस्तुएं, ज़ेवर, कपड़ा, नकद, राशि आदि पर पति एवं उसके परिवार के सदस्य अपना कब्ज़ा कर लेते हैं। यहां तक कि उसके निजी वस्त्र व आभूषण भी वे अपने संरक्षण में ले लेते है। इस प्रकार आज की स्त्री ''स्त्री-धन'' से वंचित हो गई है । पत्नी सब कुछ समझते हुए भी इसकी शिकायत नहीं करती क्योंकि वह जानती है कि इससे घर में आपसी संबंधों में कटुता आयेगी और गृह क्लेश पैदा होगा। अतः वह चुपचाप इस स्थिति से समझौता कर लेती है । एवं उसके परिवार के सदस्य अपना कब्जा कर लेते है। यहां तक कि उसके निजी वस्त्र व आभूषण भी वे अपने संरक्षण में ले लेते है। इस प्रकार आज की

स्त्री "स्त्री धन" से वंचित हो गई है । स्थिति की गंभीरता तब प्रकट होती है जब विवाह संबंध विच्छेद होने की नौबत आ जाती है। ऐसे अवसर पर पत्नी को खाली हाथ घर से निकाल दिया जाता है, मानो घर की सम्पत्ति में या घर बनाने में स्त्री का कोई अधिकार या योगदान ही न रहा हो। उसके मायके से मिला नकद रूपया, जेवर, कपड़े इत्यादि भी ससुराल वाले अपने पास रख लेते हैं।

इस विषय में सूरज कुमार व उसकी पत्नी प्रतिभा रानी का बहुचर्चित क़िस्सा याद आता है । सन 1977 में प्रतिभारानी को उसके पति सूरज कुमार व ससुराल वालों ने बच्चों सहित घर से निकाल दिया। उसके उसके विवाह पर मिले सोने के जेवर, चांदी का सामान और कपड़े भी नही दिए गए। उसके विवाह पर उसके माता पिता एवं संबंधियों ने लगभग 60 हज़ार रु. का सामान दहेज स्वरूप दिया था । क्षुब्ध प्रतिभारानी ने न्यायालय में याचिका दी और अपना हक़ मांगा । न्यायालय ने उसकी याचिका यह कह कर रदद कर दी कि "विवाहित स्त्री जब अपने पति के घर में प्रवेश करती है तो "स्त्री-धन" जो विवाहित स्त्री की संपत्ति होती है संयुक्त संपत्ति हो जाती है।" इस प्रकार न्यायालय ने उसे अपने "स्त्री धन" के अधिकार से वंचित कर दिया । प्रतिभारानी हिम्मत नही हारी । उन्होंने उच्चतम न्यायालय में याचिका दी । उच्चतम न्यायालय ने पंजाब व हरियाणा उच्च न्यायालय व इलाहाबाद उच्च न्यायालय के फ़ैसले को रद्द कर दिया । एक विशिष्ट फैसले मे उच्चतम न्यायालय ने बताया कि विवाह के समय या उसके पश्चात वधू को दिए गए उपहार उसकी अपनी सम्पत्ति होते है और यदि पति अथवा ससुराल वाले इस सम्पत्ति को देने से मना करते हैं तो उन पर कानूनी कार्यवाही की जा सकती है । न्यायाधीशों ने कहा कि इस अपराध के लिये पति एवं ससुराल वालों को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 405 व 406 के अतंर्गत तीन माह की जेल-सज़ा भी हो सकती है । उन्होंने कहा कि 'स्त्री धन' स्त्री की अपनी सम्पत्ति तब तक रहती है जब तक स्त्री अपने पति अथवा ससुराल वालों को यह सम्पत्ति न सौंप दे और इस संबंध में एक समझौता न कर लें । यह कहना कि स्त्री धनपति के संरक्षण में रखा जाता है अतः यह कोई अपराध नहीं है, यह कानून

के वास्तविक प्रयोजन को खंडित करता है । इन न्यायधीशों ने उच्च न्यायालय के फैसले को पुरुष सत्ता से प्रभावित पाया और कहा कि इस प्रकार के गलत रवैये को चलने नही दिया जा सकता । " (टाइम्स ऑफ इंडिया दिनांक 21–3–1985)

सभी महिलाओं के पास न्यायालय के दरवाजे खटखटाने के साधन व शक्ति नहीं होती है । न जाने कितनी असहाय स्त्रियाँ आज भी इस कानून से अनजान होगी, न जाने कितनी औरतें न्याय मांगने में अयसर्म होगीं और अपना हक खोकर दया का जीवन व्यतीत कर रही होंगी।

अध्याय–2

दूल्हा बिक रहा है

दूल्हा बिक रहा है

आज दूल्हा बिक रहा है । शादी के बाज़ार में उसकी बोली लगाई जा रही है । जो जितना अधिक दाम देगा वह उतना ही योग्य दूल्हा खरीद सकता है चाहे उसका परिवार किसी भी वर्ग का क्यों न हो। मध्यम वर्ग के परिवार दूल्हे की अधिक कीमत लेकर उच्च वर्ग में अपना संबंध स्थापित कर सकते है । जिस प्रकार व्यापारिक केंद्रों में वस्तु का मूल्य उसकी उम्दा किस्म पर निर्धारित किया जाता है, ठीक उसी प्रकार आज दूल्हे का मूल्यांकन भी उसकी आर्थिक क्षमता या भावीक्षमता पर किया जा रहा है । मूल्य निर्धारण के मुख्य मापदंड हैं दूल्हे की शिक्षा, नौकरी, व्यवसाय एवं धनोपार्जन की क्षमता । लड़की के माता पिता अपनी आर्थिक क्षमता के अनुसार खुले बाजार से दूल्हा खरीद सकते हैं। आज समाचार पत्रों व पत्रिकाओं में वर वधू के लिए अनेकों वैवाहिक विज्ञापन छपते हैं। जिनमें आयु, वज़न, लम्बाई, रंग रूप के साथ साथ आर्थिक स्तर का विशेष रूप से वर्णन होता है । वैवाहिक विज्ञापनों में विवाह को एक नया रूप दिया गया है । हर दूल्हे का मूल्य उसकी धनोपार्जन की क्षमता व व्यवसाय पर आंका जाता है । दूल्हा यदि नौकरी करता है तो यह भी देखा जाता है कि अमुक नौकरी में ऊपर से आमदनी का कोई स्त्रोत है या नहीं । जहाँ एक क्लर्क की कुछ हज़ार रूपये की कीमत है वहाँ एक आई. ए. एस. दूल्हे के लिये कई लाख रूपये तक की माँग की जाती है । इसी प्रकार उद्योगपति अथवा भावी उद्योगपति का मूल्य भी उसके उद्योग से धनोपार्जन की क्षमता के अनुसार तय किया जाता है । धनोपार्जन की क्षमता के अतिरिक्त अन्य गुण जैसे स्वास्थ्य, स्वभाव, आचरण, चरित्र आदि चुनाव की कसौटी पर अधिक महत्व नही रखते। जिसके पास जितना धन है वह उसी के अनुसार योग्य दूल्हा खरीदना चाहता है ताकि उसकी बेटी भौतिक सुख की छाया में जीवन व्यतीत कर सके । जिनके पास धन का अभाव होता है वे भी कर्ज लेकर या सम्पति बेचकर दूल्हा खरीदना चाहते हैं। चाहे उन्हें स्वयं आजीवन आर्थिक संकट से जूझना पड़े । उनकी तो बस एक ही चाह होती है कि उनकी पुत्री असीम भौतिक सुखों की छाया में समस्त जीवन व्यतीत करे।

विवाह सम्पन्न हो जाने के बाद उनका यह सुनहरा सपना कितना सच निकलता है, यह तो बाद में हालात ही बताते हैं। जो पिता निर्धन होते हैं वे अपनी गुणवान बेटीके लिये सुयोग्य वर प्राप्त करने की कल्पना भी नहीं कर सकते । सजातीय विवाह प्रथा के कारण यह समस्या और भी विकट हो गई है । अपनी ही जाति में यदि योग्य वर सीमित होते हैं तो अभिभावकों में पुत्री के लिये सुशिक्षित एवं उच्च पदस्थ वर को पाने के लिये होड़ सी लग जाती है । वे किसी भी कीमत पर अपनी पुत्री के लिये योग्य वर प्राप्त करना चाहते हैं।

आज से पचास साठ वर्ष पूर्व दूल्हा बिकाऊ नहीं होता था । आज की तरह वर की बोली वस्तु के रूप में नहीं लगाई जाती थी । वर का चुनाव अपने सम परिवारों से किया जाता था । कुल पुरोहित अथवा ब्राह्मण वर्ग वर कन्या सुझाने का कार्य करते थे । आज की तरह उन दिनों वैवाहिक विज्ञापनों का प्रचार नहीं था । विवाह के समय यदि कुछ लिया-दिया जाता था तो वह आपसी मान सम्मान या प्रतिष्ठा के अनुसार स्वेच्छा से किया जाता था । वर पक्ष न तो माँग ही करते थे और न सुझाव देते कि उन्हें विवाह अवसर पर अमुक वस्तु अथवा राशि दी जाये। उत्तर प्रदेश में, जहाँ दहेज प्रथा विकराल रूप में है, आज की तरह मांग नहीं थी। उच्च आर्थिक स्तर के परिवारों की वृद्ध स्त्रियों एवं आई. सी. एस., आज कल यह सेवा आई. ए. एस. कहलाती है, आफिसर की पत्नियों से जानकारी मिलती है कि उनके विवाह के अवसरों पर वधू पक्ष से कोई माँग नहीं की गई थी । प्रतिष्ठित परिवार स्वेच्छा से अपनी प्रतिष्ठा के अनुसार वर पक्ष का आदर सत्कार व मान करते थे । भेंट स्वरूप अनेक प्रकार की वस्तुएं दी जाती थी जिनमें जेवर, कपड़े के अतिरिक्त व्यवहार में आने वाली अनेक वस्तुएं भी होती थीं।

आज हमारे देश में दूल्हा वर्ग स्थापित हो गया है । "दूल्हा वर्ग" ने समाज में अपना एक अलग स्थान बना लिया है । दूल्हा वर्ग का संबंध पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त वर्ग की बढ़ोत्तरी से जुड़ा लगता है । पिछले चालीस--पचास वर्षों में पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त वर्ग बड़ी तेज़ी से बढ़ा है । पाश्चात्य शिक्षा की प्राप्ति के फलस्वरूप युवकों को सरकारी कार्यालयों

में नौकरियाँ मिली हैं। युवकों ने अपने रोज़गार शुरू किए है। जिनसे उन्हें खूब धन की प्राप्ति हुई है । धन की प्राप्ति के साथ साथ उनके रहन सहन का स्तर भी ऊँचा उठा है । वे स्वयं एवं उनके परिवार विशेष सुविधाओं तथा ऐश आराम की आदी हो गये हैं। समय बीतते बीतते ऐसे पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त युवकों को विवाह के बाज़ार में वस्तु के रूप में प्रदर्शित किया जाने लगा और उन्हें उन पार्टियों को बेचा जाने लगा जो उन्हें अधिकतम मूल्य उपलब्ध करा सकें । पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव मानसिकता पर भी पड़ा । शिक्षित वर्ग में विचारों में भी परिवर्तन हुआ। नई विचारधारा का प्रवाह हुआ, विचारों में स्वतंत्रता आई। पाश्चात्य शिक्षा व धन की प्राप्ति के साथ नई जरूरतें बढ़ी, नई इच्छाएं जागृत हुई, नई प्रेरणाओं ने जन्म लिया, रहन सहन के नये नये तरीके पनपे । ''दूल्हा वर्ग'' के बनने में व दूल्हे के बिकने में इन आधुनिक परिवर्तनों का भी काफी योगदान रहा है ।

आइये, अब देखें कि दूल्हा किस तरह बिकता है ? आवश्यकता नही कि वर पक्ष प्रत्यक्ष रूप से वर का मूल्य कन्या पक्ष के सम्मुख प्रस्तुत करे। बर पक्ष यह दर्शाने का प्रयास करेगा कि उन्हें विवाह में दहेज या नकद कुछ नहीं चाहिए। उन्हें तो केवल गुणवती कन्या चाहिए। किंतु वर पक्ष बड़े ही सांकेतिक ढंग से दहेज की मांग करता है । वे बतायेंगे कि उन्होंने अपने पुत्र की शिक्षा पर इतनी राशि व्यय की है, उन्होंने अपनी कन्या को विवाह पर इतना खर्च किया था । उनके परिवार की अन्य पुत्री के विवाह पर इतने हज़ार नकद रूपये व इतने हज़ार रुपये के ज़ेवर दिए गए थे । उनके सगे संबंधियों को इतने हज़ार का कपड़ा व ज़ेवर दिया गया था । अतः उसके विवाह पर उन्होंने लाख से भी अधिक रूपये खर्च किये थे । अमुक का पति उच्च कोटि का उद्योगपति है अतः उसके विवाह पर तो कई लाख रूपये खर्च किये गये थे । इस प्रकार बहुत ही सरल सी वाणी में वर पक्ष दूल्हे की कीमत कन्यापक्ष को बता देते हैं। और साथ में यह भी स्पष्ट कर देते है कि वे कितना रुपया नकद लेगें, कि कितना जेवर, कपड़ों पर व कितना फर्नीचर व अन्य घर के सामान, सवारी आदि पर खर्च कराना चाहेंगे । लड़के के लिए यदि कोई नया उद्योग स्थापित करना होगा या दुकान लगानी होगी तो उसके लिये भी वे

रुपया बड़ी तरकीब से मागेगे । वे कहेंगे कि मशीन लगाने में इतना रुपया खर्च होगा । माल लाने को इतना रुपया चाहिए। ठेकेदार को इतनी राशि देनी है आदि आदि । यदि आप इसमें पैसा लगायेंगे तो आपकी लड़की के नाम से पैसा लगेगा । इसमें आपकी लड़की साझेदार बनेगी और उसकी इस उद्योग में हिस्सेदारी होगी। वे बड़े ही स्वाभाविक ढंग से नम्रतापूर्वक बतायेंगे कि उन्हें तो कुछ नहीं चाहिए, जो कुछ भी वे देगें वह उनकी कन्या के ही काम आयेगा । धीरे–धीरे वे वह खर्च भी बतायेंगे जो विवाह के अवसर पर सजावट, बारात की आवभगत, भोजन आदि पर किया जाना चाहिए। बड़े शहरों में वर पक्ष बड़े ही अदांज से कहेंगे कि ''बारात का भोजन तो आप पांच सितारा होटल में देंगे ही ' यदि बारात शहर से आनी होती है ते वे कन्या पक्ष से बारात के आने जाने का पहले दर्जे का रेल किराया या हवाई जहाज का किराया भी किसी न किसी बहाने से लेना चाहेंगे । ''अमुक संबंधी काफी सुख–सुविधा के आदी हैं उन्हें यात्रा में कठिनाई नहीं होनी चाहिए" ''लड़के के दादा दादी, ताई ताऊ बुआ आदि वृद्ध है वे इतनी दूर की कठिन यात्रा नहीं कर सकते ।'' इसी प्रकार वे कहेंगे कि ''विवाह अवसर पर सजावट के साथ साथ् बरातियों के मनोरंजन का प्रबंध तो आप कर ही देंगे । आखिर इसमें आपकी भी तो शान है ।''

पुत्री के लिये सुयोग्य वर प्राप्त करने की कामना से कन्या पक्ष वर पक्ष की सब मांगे एवं सुझाव मानना स्वीकार करता है उसे आशा रहती है कि उनकी पुत्री सम्पन्न परिवार में सुखी रहेगी और किसी प्रकार का आर्थिक अभाव अनुभव नहीं करेगी। विवाह के पश्चात उनकी बेटी सुखी रहेगी अथवा नहीं, यह कुछ निश्चित नहीं होता ।

अध्याय–3

उपभोक्तावाद

उपभोक्तावाद

आखिर दहेज की मांग क्यों? आज एक ओर महंगाई दिनों–दिन बढ़ रही है और परिवार दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति कठिनाई से कर पा रहे हैं, दूसरी ओर बाज़ार उपभोग की विभिन्न प्रकार की वस्तुओं से भरे हुए है। बड़े – बड़े वाणिज्य एवं उद्योगपित नित्य नई नई वस्तुएं तैयार करके बाजार में लाते है। इन वस्तुओं का धूमधाम से प्रचार किया जाता है। इसके लिये वे समाचार पत्र, पत्रिकाओं, रेडियो, टेलिविजन फिल्म आदि माध्यमों का प्रयोग करते है। शहर हो या गांव सभी जगह इनका प्रचार बस अड्डों पर, रेलवे स्टेशनों पर, सड़कों पर, बाज़ारों में, बिजली के खम्भों आदि पर पोस्टर लगा कर और हैंड-बिल बांट कर किया जाता है आये दिन बाजार में नवीन से नवीनतम वस्तु दिखाई देती है । चाहे वह घर के उपयोग की वस्तु हो चाहे सौन्दर्य वृद्धि संबंधी, चाहे बिजली के उपकरण हों या सामाजिक स्तर की प्रतीक विविध वस्तुएं। हमारे समाज में इन वस्तुओं की प्राप्ति की ललक दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, विशेषतः मध्यम वर्ग में जहां आर्थिक साधन सीमित होते हैं। शहरों में तो यह चाह खूब विकसित है ही, पर गांव में भी अब पनप रही है । हर किसी के पास इन वस्तुओं की प्राप्ति की इच्छा पूर्ति करने के लिये समुचित साधन नहीं होते अतः वे अन्य साधनों की खोज करते हैं जहाँ से वे आसानी से पैसा प्राप्त कर सकें और अपनी तृष्णा तृप्त कर सकें । दहेज आसानी से पैसा प्राप्त करने के अन्य साधनों में से एक साधन मान लिया जाता है । अतः पुत्र विवाह पर वर पक्ष विभिन्न वस्तुओं की माँग प्रस्तुत करता है । दूल्हे के स्पर्धापूर्ण बाज़ार में कन्या-पक्ष मुंह माँगी कीमत चुका कर ही उचित वर खरीद सकता है ।

उपभोग की कुछ वस्तुएं स्वतः ही माता पिता दहेज में देते हैं। वे सोचते है इन वस्तुओं में उनकी बेटी को सुख मिलेगा । काम काज में सुविधा होगी और समय की बचत होगी । मध्यम वर्ग कपड़े धोने की मशीन, बिजली की प्रेस, रसोई में काम आने वाले छोटे बड़े उपकरण अपनी लड़की को इस उद्देश्य से देते हैं कि उनकी बेटी सुख से रहेगी।

बड़ी बड़ी वस्तुएं जैसे रंगीन टी. वी. फ्रिज, स्टीरिओ, वीडियो आदि की मांग भी बहुधा इसी उद्देश्य से पूरी कर दी जाती है किंतु वास्तविकता तो कुछ और ही होती है। ससुराल वाले दहेज मे आया यह सब सामान अपने कब्जे में कर लेते है। और उसका उपभोग मात्र दिखावे या सामाजिक स्तर बढ़ाने के लिए करते हैं।

उपभोग की वस्तुओं की माँग गांव में भी बढ़ती जा रही है। हरित-आंदोलन के पश्चात कुछ खेतिहर खूब सम्पन्न हो गये है। नये नये सम्पन्न हुए इन परिवारों में उपभोग की वस्तुओं ने प्रवेश पाया है और उनका प्रयोग वहां दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है। इस वर्ग का प्रभाव गांव के अन्य वर्गों पर भी पड़ा है। अतः वे भी इन वस्तुओं की मांग के साथ साथ अनेकों उपभोग की वस्तुओं की मांग रखते है। इन वस्तुओं में एक विशेष वस्तु सम्मिलित है— और वह है सवारी का साधन। गांव वाले विवाह अवसर पर अपने सामाजिक स्तर के अनुरूप साइकिल, अथवा मोटर साइकिल की मांग भी करते है। एक प्रकार से इस प्रकार की वस्तु उनके ग्रामीण जीवन की एक मूल आवश्यकता बन गई है। इसके द्वारा वे पास के बड़े बड़े शहरों से जुड़े रह सकते हैं। प्रायः यह भी देखने मे आता है कि गांव में दहेज में कुछ ऐसी वस्तुएं भी ले ली जाती है। जिनकी परिवार में न आवश्यकता होती है न उपयोगिता। घर में उसके रखने तक की उचित व्यवस्था नहीं होती। इस प्रकार की वस्तुएं शहरों की देखा–देखी ले ली जाती हैं।

दहेज बनाम – पैतृक सम्पत्ति

सन 1955 के हिंदु सक्सेशन अधिनियम ने समाज मे नारी के स्तर व अधिकारों को उन्नत किया है। इस कानून के अंतर्गत सदियों से पैतृक सम्पत्ति में अधिकार से वंचित पुत्री को पिता की चल एवं अचल सम्पत्ति में पुत्र के बराबर का अधिकार मिला। इस कानून की चर्चा बड़ी सरगर्मी से शहरों और गांवों के परिवारों में हुई। क्योंकि इसमें महिला को पति की सम्पत्ति मे, पुत्र–पुत्री व माँ (जहाँ हो) को बराबर अधिकार मिला। यहां सब पुत्रियो में समानता है चाहे वह ब्याही हो या अनब्याही,

अमीर या गरीब, संतान वाली हों या बिना संतान के ।। कानून तो बन गया, जनता को इसकी जानकारी भी हो गई किंतु इसका लाभ महिलाओं को नहीं मिला ।। परंपरागत भारतीय समाज की मनः स्थिति इतनी सरलता से कहां बदलती है ?? वास्तविकता यह रही कि महिलाओं ने न तो ज़ोर देकर पिता की सम्पत्ति में अपना हक मांगा और न ही स्वतः उन्हे दिया गया ।। भारतीय संस्कार इस बात को स्वीकार ही नहीं करते कि पुत्री को पैतृक सम्पत्ति में बराबर का अधिकार मिलना चाहिए। जहां कहीं लड़कियों को पिता की संपत्ति में हक देने की बात उठाई गई वहां स्वयं लड़कियों ने अपने परिवार के सम्मान की ओट लेकर अधिकार छोड़ दिया ।। फलतः कानून बन जाने के बाद भी प्रायः लड़कियों को पैतृक सम्पत्ति में विशेषतः अचल सम्पत्ति में कोई हक नहीं मिलता है ।। रूढ़िवादी विचारों से प्रभावित पिता अपनी पुत्री को अपनी सम्पत्ति का कुछ भाग दहेज स्वरूप देकर अपनी सम्पत्ति में उसको हिस्सा देने का अपना कर्तव्य पूरा करने का प्रयास करता है। यहां एक बात विचारणीय यह है कि अत्यंत सम्पत्तिवान पिता भी अपनी पुत्री को अचल सम्पत्ति में हक नहीं देता ।। मकान, दुकान, जमीन, खेती फैक्टरी में पुत्रियों का कोई हक नहीं होता ।। विपत्ति के समय जब कभी पुत्री संदैव के लिए पति का घर छोड़कर मायके रहने आती है तो वह भाइयों की दया पर पिता के मकान में रहती है,अपने अधिकार से नहीं ।।

यह आवश्यक नहीं कि पिता की मृत्यु के बाद भाइयों के मन में लालच आ जाने से ऐसी स्थिति आती हो,वरन् जानबूझकर ऐसी स्थिति बनाई जाती है ।। अत्यंत शिक्षाप्रद एवं आधुनिक विचारों को पिता भी प्रायः अपनी वसीयत लिखते समय लड़कियों को सम्पत्ति में पुत्र के बराबर के अधिकार से वंचित कर देते हैं ।। वे जानबूझकर ऐसा करते हैं। उनके विचार में पुत्रियों को विवाह के अवसर पर दहेज दे दिया गया या दे दिया जाएगा और इस पर काफी राशि खर्च की गई थी या की जायेगी अतः सम्पत्ति में पुत्रियों को हिस्सेदार बनाने की आवश्यकता ही नहीं होती ।। यदि दहेज की मांग पूर्णतः हट जाये तो आशा है कि माता–पिता अवश्य ही पुत्री को सम्पत्ति में पूरा भाग देना चाहेंगे ।।

ग्रामीण क्षेत्रों में महाजन व पूंजीपति उधार पर रुपया चलाकर दहेज प्रथा को बढ़ावा देते है। अनेकों परिवार इनसे कर्ज लेकर विवाहोत्सवों पर खर्च करते है। कर्ज़ के बदले में उन्हें अपनी सम्पति, खेतिहर भूमि गिरवी रखनी पड़ती है । समय पर कर्ज़ा न चुकाने की हालत में महाजन इनकी सम्पत्ति ज़ब्त कर लेते हैं और इन्हें भूमिहीन बना छोड़ते हैं। शहरी जीवन की मान्यताएं उनके सामाजिक आर्थिक व सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित करती हैं। शहरी जीवन की मान्यताएं उनके जीवन में अनेकों आकांक्षाएं तो भर देती है, किंतु उनके पास उन्हें संतुष्ट करने की क्षमता बहुत न्यून होती है गांवों से शहरों में आये अनेक परिवार गरीबी की स्थिति में निर्वाह करते हैं। धन प्राप्त करने के विविध साधनों की खोज करते है दहेज को पूंजी का साधन समझकर उस पर इस वर्ग की निर्भरता बढ़ती है ।

दहेज से मध्यम वर्ग अधिक प्रभावित होता है क्योंकि उसकी आकांक्षाएं अधिक और साधन कम होते है। वे दहेज के माध्यम से अपने कारोबार और धंधे के लिए पूंजी जुटाना चाहते है। शायद इसीलिए मध्य वर्ग में दहेज की प्रथा सबसे अधिक प्रचलित है। आंकड़ों व इस विषय में एकत्रित की गई जानकारी से भी यह विदित होता है कि मध्यम वर्ग में ही दहेज के कारण स्त्रियों की सबसे अधिक मृत्यु होती है। यह वर्ग दहेज के लालच में इतना अंधा हो जाता है कि उसे दहेज की बुराइयां नजर नहीं आती । दहेज की बुराइयों के परिणाम से भी यह वर्ग पूणर्तः उदासीन और निष्ठुर हो जाता है ।

अध्याय–4

महिला : एक आर्थिक बोझ ?

महिला एक आर्थिक बोझ ?

कभी कभी प्रश्न उठता है कि क्या दहेज की मांग कन्या पक्ष से इसलिए की जाती है कि कन्या परंपरागत परिवार में आर्थिक रूप से दूसरों पर निर्भर व न कमाने वाली सदस्या होती है और परिवार के ऊपर आर्थिक बोझ मानी जाती है ।। अतः जब यह बोझ एक परिवार से दूसरे परिवार के ऊपर डाला जाता है तो उस बोझ के ऐवज में दहेज स्वरूप हानि की पूर्ति की जाती है ? नहीं ऐसा नहीं है ।। भारतीय इतिहास साक्षी है कि महिलाओं ने सदैव ही आर्थिक गतिविधियों में अपना योगदान दिया है ।। किसी किसी वर्ग में तो महिलाओं का योगदान बहुत सक्रिय रहा है,, किंतु वहां भी आज दहेज प्रथा की जड़ें उतनी ही मजबूत देखने में आती हैं जितनी अन्य कहीं ।।

परंपरागत समाज में महिलाओं का कार्य क्षेत्र घर एवं परिवार रहा है।। भारतीय समाज में लिंग के आधार पर स्त्री एवं पुरुष का कार्य क्षेत्र बांटा गया है ।। जहां पुरुष परिवार के लिये धन संचित करता है वहां नारी घर व परिवार की देखभाल करती है ।। उसकी विभिन्न जिम्मेदारियां होती हैं।। जैसे परिवार के लिए खाना बनाना,, सफाई करना,, कपड़े धोना,, बच्चों का पालन पोषण करना,, उन्हें पढ़ाना-लिखाना बीमारों की देखभाल करना,, आवभगत करना,, सगे संबंधियों के साथ मधुर संबंध बनाये रखना,, समाज में प्रतिष्ठा बनाये रखना आदि ।। ग्रामीण क्षेत्रों में ईंधन एकत्रित करना और दूर के स्थान से पानी लाने का काम भी महिलाएं करती हैं।। न केवल यह,, बल्कि स्त्री घर पर रह कर उन सभी कामों में हाथ भी बंटाती हैं जो पुरुष धनोपार्जन के लिए घर पर करता है ।। खेतिहर वर्ग में महिलाएं पशुओं की देखभाल करती हैं उनके लिए चारा लाती हैं,, दूध दुहती हैं,, घी मक्खन बनाती हैं,, अनाज की सफाई करके संग्रह करती हैं।। शिल्पकारियों के घरों में भी महिलाएं पुरुषों के काम में हाथ बंटाती हैं जैसे जुलाहों के घरों में सूत रंगने और तैयार करने का काम महिलाएं करती हैं,, कुम्हार के घर में बर्तन बनाने के लिये मिट्टी गोदकर तैयार करती हैं आदि आदि ।। दुकानदारों के घरों में भी स्त्रियां दुकान के कामों में हाथ बटाती हैं जैसे बेचे जाने वाले माल

की सफ़ाई, छटाई, कुटाई धूप लगाना, पैकिंग करना आदि अनेकों काम महिलाएं घरो में करती है। विभिन्न प्रकार के घर परिवार के धनोपार्जन से जुड़े अनेक काम स्त्रियां भोर से रात्रि तक करती हैं पर उनके काम को कोई मान्यता नहीं दी जाती, उसका कोई मूल्य नहीं आंका जाता। क्रय–विक्रय अर्थ व्यवस्था में केवल वैतनिक कार्य की मान्यता है अवैतनिक की नहीं, चाहे वह कितना भी महत्वपूर्ण या आवश्यक क्यो न हो। ऐसी स्थिति में महिलाएं श्रम के पारितोषिक से भले ही वंचित रह जाती हों, किंतु उनके श्रम को नकारा नहीं जा सकता।

गांवों और शहरों दोनों में महिलाएं धनोपार्जन के लिए घर के बाहर भी वैतनिक कार्य करती हैं। गांवों में महिलाएं खेतों पर बुआई, नलाई कटाई आदि की मजदूरी करती है भले ही उनकी मजदूरी का वेतन पुरुष के उतने ही काम के बदले में कम दिया जाता है। प्रायः महिलाओं के श्रम को पारिवारिक श्रम मानकर उनकी मजदूरी का वेतन परिवार के पुरुष को दे दिया जाता है जिस पर महिलाओं का कोई अधिकार नही रहता। शहरों में भी बढ़ती हुई मंहगाई व अन्य कारणों से महिलाओं ने विभिन्न कार्यक्षेत्रों में प्रवेश किया है। शहरों में काम करने वाली महिलाओं की संख्या पिछले कुछ वर्षों में बड़ी तेज़ी से बढ़ी है यद्यपि अधिकतर महिलाएं निम्न दर्जे के कामों में जुटी हैं। उच्च शिक्षा प्राप्त महिलाओं ने लगभग सभी क्षेत्रों में प्रवेश पाया है। सदियों से बाहर की दुनिया से वंचित भारतीय नारी के लिये यह साधारण उपलब्धि नही है।

किंतु कैसी विडम्बना है कि कार्यरत, कमाऊ, नौकरी पेशा महिलाओं से भी दहेज की मांग ठीक उसी प्रकार की जाती है जैसी अन्य महिलाओं से। दहेज मांगने वाले इस बात को महत्व नहीं देते कि लड़की आर्थिक रूप से आत्म निर्भर हैं या नहीं। उन्हें तो सुशिक्षित नौकरी पेशा वधू चाहिए, जो साधारणतः अन्य वधुओं से अधिक चुस्त, समझदार और फुर्तीली होती हैं। विवाह पर दहेज के साथ साथ उन्हें हर महीने उनके वेतन की थैली के रूप में भी दहेज चाहिए। प्रायः अपने वेतन पर इन महिलाओं का कोई हक नहीं होता। उनके पति अथवा सास उनकी पूरी तनख्वाह रख लेते है और बस वधू को किराये का न्यूनतम खर्च दे देते

हैं। प्राइमरी स्कूल की शिक्षिकाओं से प्राप्त आंकड़ों से इस कथन की पुष्टि होती है अतः औरतों का नौकरी पेशा होना या आर्थिक रूप से स्वतंत्र होना इस संदर्भ में कोई अर्थ नहीं रखता ।

हमारे समाज में नारी को एक वस्तु के रूप में इस हद तक देखा जाना लगा है कि जहां उसकी मातृत्व की भूमिका भी उसे संताप अथवा मृत्यु से बचाने में समर्थ नहीं है । महिला सौ रुपये कमाती हो या कई हज़ार उसके साथ वही अमानवीय व्यवहार किया जाता है । पिछले कुछ वर्षों में जो इस प्रकार की मृत्यु की घटनाएं हुई हैं उनमें उच्च शिक्षा प्राप्त महिलाएं, डाक्टर, विश्वविद्यालय की प्रवक्ता आदि सम्मिलित हैं। इस संबंध में दिल्ली के श्यामा प्रसाद मुकुर्जी कालेज की एक प्रवक्ता की दुखद मृत्यु की घटना याद हो आती है । शकुन्तला अरोड़ा के ससुराल वालों की दहेज की मांग उसके विवाह व दो बच्चों के जन्म के बाद भी चलती रही । पिता की मृत्युके बाद विधवा मां जब बेटी की ससुराल की माँगें पूरी करने में असमर्थ रही तो उनके पति सुभाष अरोड़ा (जो एक अन्य कालेज में प्रवक्ता थे) और उनकी सास के उन पर शारीरिक और मानसिक अत्याचार बढ़ने लगे । चोट के निशान देखकर जब कालेज की सह प्रवक्ता कारण पूछतीं तो शकुन्तला कोई न कोई बहाना बनाकर उन्हें टाल देती और परिवार की प्रतिष्ठा बनाये रखने के उद्देश्य से सत्य छिपा लेती । अत्याचार इस हद तक बढ़े कि एक दिन शकुन्तला अरोड़ा की मृत्यु का समाचार मिला । शकुन्तला की मृत्यु के बाद उनके कालेज के सहयोगियों ने उनके पति एवं ससुराल वालों को धिक्कारा । संगठित होकर प्रदर्शन किया नारे लगाये और न्याय की मांग की । शकुन्तला को तो वे न बचा पाये पर ऐसे अपराध व अन्याय के प्रति उन्होंने जन चेतना अवश्य जागृत की !

अतः यहां यह कहना अनुचित न होगा कि उच्च शिक्षा और रोज़गार से महिलाओं की स्थिति में वांछित परिवर्तन नहीं हुआ है इसका मुख्य कारण यह है कि समाज में लिंग के आधार पर व्यवहार में परिवर्तन नहीं आया है । महिलाओं को निम्न माना जाता है पुरुष नौकरी पेशा पत्नी तो चाहते है किंतु सहचरी नहीं।वे चाहते हैं कि पत्नी उनके आदेश

का पालन चुपचाप करती रहे ।। वे पढ़ी-लिखी, नौकरी पेशा पत्नी व अशिक्षित महिला से समान अपेक्षाएं रखते हैं। जहां जहां महिलाएं समान अधिकार के प्रति सचेत होती हैं वहां अधिक झगड़े और हत्यायें होती पाई गई हैं। जहां स्त्रियां अधिक अनुभवी होती है वहां महिलाओं की आत्म हत्या की घटनाएं अधिक सुनने में आती हैं।

अध्याय—5

लिंग असमानता

लिंग असमानता

परिवारों में हुए अत्याचारों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। पति का पत्नी के प्रति कटुतापूर्ण व्यवहार अधिकतर नज़रअंदाज कर दिया जाता है और उसे एक सामान्य स्थिति मान लिया जाता है अतः पत्नी पर पति के अत्याचार के विरूद्ध कोई सामूहिक ध्यान नहीं दिया जाता। इसका मुख्य कारण हमारे परंपरागत विचार हैं जो पैतृक पारविारिक ढांचे के फलस्वरूप बने हैं। परिवार में स्त्री पर अत्याचार संबंधी हो रहे कार्यों से यह संकेत मिला है कि कुछ आदिम व जनजाति समूहों में स्त्रियों पर घरों में अत्याचार होना परंपरागत माना गया है। यह घटना उन समुदायों में और भी अधिक होती है जहां महिलाओ का स्तर पुरुषों से निम्न माना जाता है।महिलाओं के प्रति इस दुर्व्यवहार का कारण हमारी सामाजिक एवं सांस्कृतिक परंपराओ में भी हो सकता है अतः उनको टटोलना आवश्यक है।

जैसा कि पहले भी इंगित किया गया है हमारा समाज पुरुष प्रधान समाज है। यहां पुत्र के नाम से वंश चलता है और उसके जन्म पर खुशियां मनाई जाती हैं।पुत्री का जन्म परिवार पर बोझ समझा जाता है। पुत्री माता–पिता के घर में कुछ समय की मेहमान समझी जाती है। जाति प्रथा द्वारा बनाई गई ऊँच नीच की असमानता में परिवार एक और असमानता जोड़ देता है। परिवार में स्त्री और पुरुष का दर्जा असमानता का माना जाता है, समानता का नहीं। हमारे समाज में यद्यपि कई प्रकार के पारिवारिक ढाँचे है किंतु हर परिवार का आधार लिंग भेद है। परिवार के ढॉचे व उसमें पनपती परंपरा ने स्त्री की मानसिकता एवं शरीर पर काबू करके उसे शक्तिविहीन कर दिया है। भारत में विदेशी शासन से मुक्ति पाने से या स्वतंत्रता से पूर्व के समाज सुधार आंदोलनों से महिलाओं की इस दिशा में प्रगति नहीं हुई है। विकास के कार्यक्रमों और योजनाओं के बाद भी स्वतंत्र भारत में पुरुष व स्त्री के बीच असमानता की बहुत बड़ी खाई है। यह असमानता कई क्षेत्रों में अत्यधिक उभर कर आई हैं। जैसे शिक्षा, रोज़गार, स्वास्थ्य, जनजीवन में योगदान, व्यक्तित्व संवारने के अवसर आदि में। महिलाओं

का स्तर निम्न होना ही उनके प्रति अत्याचार की ओर अग्रसर करता है। परंपरागत अत्याचार में कई नये अंग जुड़ गये हैं। उनमें से एक है "ढ़ेर सारे दहेज की मांग"।

स्त्री पुरुष का दर्जा असमान है और स्त्री का दर्जा निम्न है।। यह बच्चे को जन्म से ही समाजीकरण प्रक्रिया के माध्यम से सिखाया जाता है।। पुत्र व पुत्री की भाषा, खाने पहनने, शिक्षा , व्यक्तित्व के विकास के अवसर व साधनों आदि में शुरू से ही सामान्यतः माता पिता भेदभाव की नीति अपनाते हैं। प्रायः देखा जाता है कि पुत्र को अच्छा व पौष्टिक आहार दिया जाता है जबकि पुत्रियों को साधारण आहार ही दिया जाता है।पुत्र के अस्वस्थ होने पर डाक्टरी सेवाएं व औषधियां उपलब्ध कराई जाती हैं,जबकि पुत्री को घरेलू उपचार पर ही छोड़ दिया जाता है।। हमारे देश मे बालिकाओं की मृत्यु दर बालक की मृत्यु दर से अधिक होने का एक मुख्य कारण बालिकाओं के प्रति लापरवाही है।। इस क्षेत्र मे किए गए शोध कार्यों से प्राप्त आंकड़ों व तथ्यो से पता चलता है कि बालिकाएं बालक के मुकाबले अधिक सशक्त होती है और उसमे कठिन परिस्थितियों को झेलने की शक्ति बालक से अधिक होती है।। पुत्र को शिक्षा के सभी अवसर, साधन उपलब्ध कराये जाते है, पुत्री को नही। जहां कहीं साधन सीमित होते है वहां भी पुत्र की शिक्षा को अधिक महत्व दिया जाता है चाहे पुत्री, पुत्र से कहीं अधिक प्रतिभाशाली क्यों न हो। पुत्री को जन्म से सिखाया जाता है कि वह शान्त, सुशील, मितभाषी बलिदानी बने जबकि पुत्र को सिखाया जाता है कि वह आक्रामक, साहस से बोलने वाला व आत्मविश्वासी बने।। पुत्री को इस सीमा तक आत्म बलिदान के लिये तैयार किया जाता है कि वह अपना सब कुछ धीरे धीरे खोती जाती है।। इस प्रक्रिया पर भी समाज शिष्टता की छाप लगा देता है।। नारी के बलिदान को सराहा जाने लगता है इसी प्रकार व्यक्तित्व विकास के अवसर भी पुत्रियों को समान नहीं दिए जाते।। पुत्र को बाहर जाकर फ़ुटबाल, क्रिकेट, गॉली बाल खेलना पतंग उड़ाना आदि खेल खेलने तक की सुविधा होती है जबकि पुत्री को इन खेलों के प्रति इच्छा व्यक्त करने मात्र पर ही धिक्कारा जाता है और माँ के साथ घर के कामकाज मे हाथ बंटाने का आदेश दिया जाता है।।प्रायः देखा जाता

है कि पुत्र को बाहर आने जाने की छूट होती है ताकि वे बाहर की दुनियां को नियंत्रित कर विभिन्न परिस्थितियों का विश्वास के साथ सामना कर सके।। यह अधिकार पुत्रियों को नहीं होता।। उनको बाहर आने जाने की छूट नहीं होती।। उनको शिक्षा संस्था या कार्यस्थल से सीधे घर आने का आदेश दिया जाता है। उनके आने जाने पर निगरानी रखी जाती है।। बाहर लड़कों से बातचीत करने की अनुमति नही होती। यदि कोई लड़की कभी कार्यवश किसी लड़के से बातचीत करती है तो उसके ऊपर उंगलियां उठाई जाती हैं। लड़के भले ही लड़कियों के साथ किसी प्रकार का अभद्र व्यवहार करे, उनकी भर्त्सना नहीं की जाती।। लड़कियों के बाहर आने जाने पर परिवार में इतनी पाबंदी लगा दी जाती है कि उन्हें घर के बाहर की दुनिया के काम काज की और जन-कार्यों की कोई जानकारी नहीं हो पाती।। आवश्यकता पड़ने पर उन्हें हर कदम पर पुरुषों के ऊपर निर्भर होना पड़ता है, उनका सहारा लेना पड़ता है।। बाहर की दुनिया से उन्हें इतना डर लगने लगता है कि वे घर के अत्याचारों को सहना सीख लेती है और इसे अपने नियति मान लेती हैं बाहर की दुनिया से भयभीत ऐसी लड़कियॉ परिवार में अत्याचार सहना अधिक उचित समझती है, बजाये इसके कि उन्हें ऐसी स्थिति का सामना करना पड़े कि उन्हें घर छोड़कर जाना पड़े।।

प्रारंभ से अंत तक पुत्री को यही शिक्षा दी जाती है कि समाज में उसका दर्जा पुरुष से छोटा है उसे यह सिखाया जाता है कि परिवार में उसका निजी कोई अस्तित्व नहीं है। उसकी पहचान उसके पिता से है, पति से है या पुत्र से है।। उसे आजीवन पुरुष के संरक्षण में रखा जाता है। उसको अपने मन, मस्तिष्क एवं शरीर पर कोई अधिकार नहीं होता।। वह जो कुछ करती है, सोचती है, चाहती है, वह सब दूसरों के लिए। स्त्री का प्रजनन पर भी अपना कोई अधिकार नहीं होता।। उसे कब बच्चे पैदा करने चाहिए व कितने पैदा करने चाहिए इस पर भी उसके पति या सास का अधिकार होता है।। पुत्र प्राप्ति की चाह में पति अथवा सास बहू पर जल्दी जल्दी गर्भवती होने के लिये दबाव डालते है चाहे बहू स्वयं इसके लिये मानसिक रूप से तैयार हो या न हो, चाहे उसका स्वास्थ्य उस प्रक्रिया के अनुरूप हो या न हो।। किंतु वह विरोध नही कर सकती क्योंकि उसका अपने शरीर पर हक नहीं होता। अधिकार होता है पुरुष को।। विरोध का अर्थ होता है ताड़नाओं को आमंत्रित करना।। इसी प्रकार स्त्री चाहते हुए भी परिवार

नियोजन के साधनों का प्रयोग नही कर सकती क्योंकि उसके लिए उनके पति की अनमुति नहीं है । परिवार नियोजन कार्यकर्ताओं के समक्ष कई ऐसी महिलाएं आई हैं जिन्हें पतियों ने निरोध प्रयोग करने के लिये बुरी तरह पीटा । वे चाहते थे कि उनकी पत्नी उनकी इच्छानुसार बच्चे पैदा करती जाये । ऐसी भी घटनाएं हैं जहां पति पत्नी को घसीटते हुए परिवार नियोजन केंद्र तक लाये और डाक्टर से उसका गर्भ निरोधक यंत्र (कौपरटी) निकलवाकर ही वापस लौटे। कुछ पति तो पत्नी पर चरित्रहीनता का लांछन लगाने से नही चूकते । इतना ही नहीं पति और सास का आदेश उसके गर्भधारण के अतिरिक्त गर्भ नष्ट करने में भी उतना ही सख्त है। कहीं कही तो जिन परिवारों में एक दो पुत्रियों के बाद पत्नी गर्भवती होती है वहां एमनियों सेनटीसिस टैस्ट द्वारा भ्रूण की डाक्टरी लिंग परीक्षा कराई जाती है । यह टैस्ट गर्भ में बालक के रोगों की जानकारी प्राप्त करने के लिये किया जाता है किंतु इसका प्रयोग लिंग परीक्षा के लिये भी किया जाने लगा है। प्राइवेट क्लीनिकों मे इस भ्रूण टैस्ट का दुरुपयोग लिंग जानकरी के लिये किया जाता है और दम्पत्ति से मुंह मांगी रकम ली जाती है। सरकार इस टैस्ट के दुरुपयोग के विरूद्ध है। यदि गर्भ में बालिका होती है तो पति या सास स्त्री को उसकी इच्छा के विरूद्ध गर्भ गिराने के लिये मजबूर करते हैं। अनेक आधुनिक विचारों की महिलाएं पुत्री जन्म को स्वीकार करने के लिये तैयार होती है किंतु परिवार के आदेश के सामने वे शक्तिविहीन होती हैं। ऐसी स्त्रियों को अनिच्छा से गर्भ गिराने के फलस्वरूप मानसिक रोग ग्रस्त हो जाने की संभावना रहती है । ऐसा रूप है हमारी सामाजिकता का जहां वैधानिक समानता केवल किताबों के पन्नों में बंद होकर रह गई है।

विवाह के पश्चात् एक वधू से जो आशाएं की जाती है और जो इसके लिये ज़िम्मेदारियां निर्धारित की गई हैं, वे भी बहुत कठोर होती हैं। लड़की को सिखाया जाता है और आशा की जाती है वह ससुराल में अपने से ज्यादा अपने ससुराल वालों का हित देखे, पति के प्रति पूर्ण समर्पित हो उसकी सेवा करे और पति व ससुराल वालों को प्रसन्न रखे। इसके लिये उसे चाहे अपने सब सुख व आराम त्यागने पड़े वह सुख दुख मे अटल रहे और पति की खुशी में अपनी खुशी प्राप्त करे । उसे यह भी

सिखाया जाता है कि नारी के लिए विवाह ही श्रेष्ठ है, विवाह को बनाये रखने के लिये उसे बड़ी से बड़ी कुरबानी देने के लिये तैयार रहना चाहिए। "स्त्री का कर्तव्य है कि वह विवाह को हर कीमत पर बनाये रखें"— ऐसी शिक्षा उसे दी जाती है । विधवा या विवाह विच्छेदित नारी का समाज में न कोई मान होता है न कोई सामाजिक जीवन होता है यह बात उसके मस्तिष्क में कूट कूट कर भर दी जाती है ।

इस प्रकार महिलाओं को समाज में एक निर्भरता का जीवन जीना पड़ता है । सामाजिक जीवन में उसकी भूमिका गौण ही है। प्रचलित सामाजिक सिद्धान्तों और नियमों के अनुसार स्त्री को बिना किसी प्रश्नचिन्ह के पति और ससुराल वालों की आज्ञा का पालन करना चाहिए और घर–गृहस्थी संभालनी चाहिए।

इसी लिंग असमानता के फलस्वरूप सामान्यतः एक विवाहित नारी को ससुराल में हर प्रकार के दुख अवहेलना एवं ताड़ना सहनी पड़ती है विवाह बंधन से मुक्ति उसे दिखाई नहीं देती क्योंकि हमारे समाज ने एक विधवा अथवा तलाकशुदा स्त्री के ऊपर कलंक चिन्ह लगाया हुआ है । पिता के घर वह वापस लौट नहीं सकती क्योंकि वहां उसे सम्मान नहीं मिलेगा और पिता विवाहित कन्या का बोझ उठा नही सकेगा। समाज के बनाये इन्हीं कठोर नियमों और रीति रिवाजों के चक्रव्यूह में फंस कर नारी असम्मान और अत्याचार के जीवन से मुक्ति चाहने लगती है । फिर वह मुक्ति चाहे आत्महत्या से मिले या हत्या से, आग लगाने से या दुर्घटना से । जीवन की समाप्ति पर कारण का कोई महत्व नहीं रह जाता ।

साधारणतः लड़कियाँ अपना दुख अपने माता पिता को नही बतातीं। क्योंकि उनके अचेतन मन में यह भावना होती है कि पिता उन्हें सहारा नहीं देगें और अपने घर में बहुत दिन रखना नहीं चाहेगे। एक परित्यक्ता पुत्री को घर में रखने से उनको दूसरी पुत्रियों के विवाह संबंध स्थापित करने में कठिनाई हो सकती है । कई ऐसी घटनाएं हैं जहां लड़कियों ने हिम्मत करके पिता के घर का सहारा मांगा किंतु उन्हें ठुकरा दिया गया।

राज आनन्द ने अपनी मां को बताया था कि उस सुबह उसके पति ने उसे मारने की कोशिश की थी और उसने मां से विनती की कि वह उसे वापस ससुराल न भेजे ।। लेकिन उसे वापस ससुराल भेजा दिया गया ।। उसी रात्रि उसकी मृत्यु हो गई।।

यह सब होता है केवल परिवार को बनाये रखने के लिये ।। आदेश होता है कि "परिवार न टूटे और चाहे जो कुछ हो जाये।।" परिवार को बनाये रखने की कीमत चुकानी पड़ती है औरत को चाहे उसे अपने प्राण की आहुति ही क्यों न देनी पड़े ।। आज औरत की जान की कोई कीमत नहीं है क्योंकि दहेज में मारी गई महिलाओं के हत्यारों के प्रति कड़ा विरोध नहीं है, कड़ी भावनाएं नहीं हैं।समाज में पुरुष को इतनी अधिक प्रधानता दे दी गई है कि पिता अपनी पुत्री उसी परिवार में देने से नहीं हिचकता जहां पहले एक पुत्री की हत्या कर दी गई थी।।

मानवता का वह आधा पक्ष जो सन्तति की रचना व विकास के लिये अधिक जिम्मेदार है, वही पक्ष अधिक तिरस्कृत है ।। महिलाओं के उस सामाजिक योगदान की कोई मान्यता नहीं है जो वह राष्ट्र को जीवित रखने और मजबूत बनाने के लिये करती है या राष्ट्र की नई पीढ़ी के प्रजनन एवं पालन पोषण के लिये करती है ।।

अध्याय—6

दहेज कानून

दहेज कानून

पिछले कुछ दशकों में दहेज प्रथा तेज़ी से फैली है । इसके विरोध में कानून बनाने की मांग महिला संगठनों एवं प्रगतिशील विचारकों ने की।- आज़ादी के कुछ ही वर्षों बाद विधान सभा में दहेज विरोध कानून बनाने का प्रस्ताव रखा गया किंतु किसी न किसी कारण से इस पर कार्यवाही न हो सकी । उन दिनों हिंदू उत्तराधिकार कानून पास करने संबंधी कार्यवाही चल रही थी । सरकार चाहती थी कि इस कानून के बनने के बाद दहेज कानून पर ध्यान देना अधिक उचित होगा । अतः सन 1959 मे हिंदू उत्तराधिकार कानून बन जाने के बाद 1959. में ही दहेज प्रथा रोकने के उद्देश्य से एक बिल लोक सभा में पेश किया गया । इस बिल की जांच करने के लिये दोनों सदनों की एक जांच समिति बनाई गई। इस समिति के सुझावों के आधार पर 1961 में दहेज विरोधी कानून बनाया गया । इससे पूर्व बिहार सरकार ने 1950 में व आंध्र प्रदेश सरकार ने 1958 में इस प्रथा की रोकथाम के लिये कानून बनाये थे किंतु इन दोनों राज्यों में यह कानून बेअसर रहे । दहेज का लेना और देना बढ़ता गया। सन 1961 में इस केंद्रीय कानून के बन जाने से देशवासियों को आशा हुई थी कि अब यह प्रथा समाप्त हो जायेगी और इसकी बुराइयो से समाज को राहत मिलेगी किंतु वास्तविकता यह रही कि अन्य दो राज्यों में बने दहेज कानून की तरह यह कानून भी बेअसर रहा । दिनों दिन दहेज की मांग बढ़ती गई। मध्यमवर्गीय परिवार को अपनी पुत्रियों के लिये बिना मोटी राशि हाथ में लिये वर ढूंढना मुश्किल हो गया । मध्यमवर्ग कर्ज जुटाकर या सम्पत्ति बेचकर अपनी लड़कियों के हाथ पीले करने पर मजबूर हो गया । कुछ राज्य सरकारो ने इस कानून मे कुछ तबब्दलियॉ भी की किंतु फिर भी दहेज की मांग करने वालों, देने वालो व दहेज को रोक नहीं सकीं ।

यद्यपि दहेज प्रथा बढ़ती गई और महिलाओं पर अत्याचार बढ़ते गये किंतु आश्चर्य की बात है कि इस कानून के अंतर्गत सन 1975 तक दहेज संबंधी मृत्यु की कोई शिकायत दर्ज नहीं की गई । इस कानून में कुछ ऐसी कमियॉ थी जिसके कारण यह लाभकारी सिद्ध नहीं हुआ । इस

कानून के अंतर्गत दहेज वह सम्पत्ति या बहुमूल्य प्रतिभूति माना गया है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से एक पक्ष से दूसरे पक्ष को दी या दी जानी तय की जाये जिसे माता पिता अथवा अन्य कोई सदस्य एक पक्ष से दूसरे पक्ष को विवाह के अवसर पर विवाह के पूर्व या विवाह के बाद में विवाह के "प्रतिफल स्वरूप दें या देना तय करे।"

इस कानून मे सबसे बड़ी एक कमी ये रही कि उपरोक्त प्रावधान मे यह तय कर पाना मुश्किल हो गया कि भेट विवाह के प्रतिफल स्वरूप दी गई थी या नहीं।। इसके अतिरिक्त यह इस कानून के अतंर्गत इस अपराध के प्रतिरोध में पक्ष को ही दहेज की मांग के विरूद्ध याचिका देनी होती थी।। भारतीय समाज मे लड़की के माता पिता अपनी लड़की की खुशी की कीमत पर ऐसा कभी नहीं करना चाहेंगे।।

इसके अतिरिक्त इस कानून मे एक और कमी यह भी रही कि दहेज मांगने वाला व दहेज देने वाला दोनो समान रूप से दोषी माने जाते थे। अत: वधू पक्ष ही भले ही अत्यन्त कठिन परिस्थितियों में दहेज दे पाता हो किंतु दोष का समान अधिकारी होता था।। अत: दहेज देने वाला याचिका देने के लिये कभी तैयार नही होता था।।

उपरोक्त दोषों के अतिरिक्त भी इस कानून में कई और कमियां थी जैसे :

1. अधिकतर दहज के केस सेक्शन 306 में 'जो आत्महत्या संबंधी है; दर्ज किये जाते थे न कि सेक्शन 302 में। यह कत्ल से संबंधित है।
2. दहेज की शिकायत की छान बीन करने के लिये न्यायालय की अनुमति लेनी पड़ती थी क्योंकि इसे जुर्म माना गया था।।
3. दहेज की शिकायत विवाह के एक वर्ष के भीतर-भीतर की अवधि में करनी होती थी।।

सन् 1961 के कानून में इस प्रकार की कुछ मूल कमियों के कारण दहेज का कोढ़ समाज में बढ़ता गया।। देश के हर कोने से रोंगटे खड़े

करने वाले किस्से और दहेज में मृत्यु संबंधी भयंकर तथ्य और आंकड़े प्राप्त होने लगे।। समाज के जागरूक लोगों में इस प्रथा के भयंकर रूप के कारण बेचैनी पैदा हो गई। उन्होंने इस कानून की अव्यवहारिता के बारे में आवाज़ उठाई और कानून मे संशोधन करने की मांग की ताकि इस बढ़ते हुए संक्रामक रोग को रोका जा सके और अपराधी को कानून के हवाले किया जा सके।। इसके साथ साथ अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष, अंतर्राष्ट्रीय महिला दशक में महिलाओं में इस बुराई के प्रति विशेष चेतना पैदा हुई।। इस अवधि में महिलाओं के अनेक नये संगठनों ने जन्म लिया।। महिलाओं के प्रति अत्याचारों एवं भेदभाव की ओर समस्त समाज का ध्यान आकर्षित हुआ और देश के कोने कोने से इस कानून में संशोधन करने की माँग आई। फलस्वरूप इस कानून में संशोधन करने की दृष्टि से सरकार ने 1980 में एक संयुक्त समिति का गठन किया। इस समिति के लिये 28 सदस्य नियुक्त किए गए जिसमें लोक सभा व राज्य सभा के सदस्यों के अतिरिक्त सचिवालय व विधि मंत्रालय के प्रतिनिधि भी सम्मिलित थे।। दो वर्ष के सोच विचार और जाँच पड़ताल के बाद इस समिति ने अगस्त 1982 में अपनी रिपोर्ट दी।। रिपोर्ट देने से पहले कमेटी ने 41 बैठकें की, 282 ज्ञापन प्राप्त किये और उन पर विचार किया, 617 गवाहों का साक्षात्कार किया और विभिन्न राज्यों के 17 शहरों का दौरा किया।।

संयुक्त कमेटी ने अपनी सिफारिश में निम्नलिखित प्रस्ताव रखे:

1. दहेज कानून में से यह वाक्य "विवाह के प्रतिफल स्वरूप" हटा दिया जाये।।
2. विवाह खर्च के लिये एक सीमा तय कर दी जाये।।
3. विवाह के समय दिए गए उपहारों की सूची तैयार की जाये और उन उपहारों को वर वधू के नाम कर दिया जाये।।
4. दहेज देने व लेने वाला बराबर का दोषी नहीं माना जाना चाहिए। सजा केवल उसको दी जानी चाहिए जो दहेज लेते हैं।।

5. दहेज मांगने वालों को ही कड़ी सजा दी जानी चाहिए।

6. दहेज संबंधी शिकायतों के लिए पारिवारिक न्यायालय स्थापित किये जाने चाहिए।

7. दहेज के अपराध को हस्तक्षेप व सुलह योग्य बनाया जाना चाहिए।

8. शिकायत करने की कोई सीमा नहीं होनी चाहिए।

कमेटी ने यह भी मांग की कि दहेज शिकायतों को निबटाने के लिये एक मजबूत ढांचा तैयार किया जाये ।

दहेज अपराध को जल्दी ही हस्तक्षेप घोषित कर दिया गया । किंतु उपरोक्त कमेटी की सिफारिश यद्यपि 1982 में आ गई थी, इसकी रिपोर्ट को संसद के समक्ष बहुत समय तक प्रस्तुत नहीं किया गया । दहेज के कारण सताई जाने वाली महिलाओं की संख्या दिन प्रति दन बढ़ती गई। शायद ही कोई दिन ऐसा होता हो जब अखबारों में दहेज से मरने वालों की दुखद सूचना न छपती हो । महिला संगठन दिन पर दिन अधिक चिंतित होते गये । राष्ट्रीय स्तर के कुछ बड़े बड़े महिला संगठनो व अन्य संगठनों ने मिल कर दिल्ली में एक ''दहेज विरोधी चेतना मंच'' का गठन किया । इसकी 25 संस्थाएं सदस्य है जिनमें अखिल भारतीय महिला परिषद, नेशनल फेडरेशन आफ इंडियन वीमन, महिला दक्षता समिति, अखिल भारतीय डेमोक्रेटिक वीमंस एसोसिएशन, यंग वीमंस क्रिशियन एसोसिएशन आदि राष्ट्रीय संगठन भी सम्मिलित हैं। इस चेतना मंच ने दहेज संशोधन बिल को पारित कराने और सन 1961 के कानून को अधिक सशक्त बनाने की दिशा में सक्रिय कार्य किया । महिला संसद सदस्यों व कई अन्य संगठनों के दबाव से यह संशोधित बिल कमेटी सिफारिशों के दो वर्ष बाद संसद में रखा गया । फलस्वरूप सन 1984 में नया कानून बनाया गया । यह कानून दिनांक 2.10.1985 को लागू किया गया । इसके अंतर्गत यह अपराध, हस्तक्षेप, जमानत योग्य एवं सुलह न करने योग्य है ।

नये कानून में यद्यपि कई परिवर्तन किए गए किंतु इसमें कुछ एक ऐसी मूल कमियाँ रह गई जिनके कारण दहेज की प्रथा पर रोक सार्थक नहीं हो सकी । इस विषय में कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं :

1. कमेटी ने सिफारिश की थी कि 1961 के कानून में दिये वाक्य "दहेज वह संपत्ति या बहुमूल्य प्रतिभूति है जो विवाह के प्रतिफल स्वरूप दिया जाये" को पूर्णतः हटा दिया जाये ताकि दहेज लेने व देने का कोई प्रश्न ही न उठे । किंतु उक्त वाक्य को हटाया नही गया । उसके स्थान पर वह सम्पत्ति "जो विवाह के संबंध में दी जाये" इन शब्दों पर बल दिया गया क्योंकि पूर्व वाक्य से यह तय कर पाना मुश्किल हो रहा था कि कौन कौन सी सम्पत्ति विवाह के "प्रतिफल स्वरूप" दी गई। इन बदले हुए शब्दों को न्यायालय क्या भाव व अर्थ देता है, कह पाना कठिन है ।

2. संशोधित कानून में यह भी प्रावधान है कि विवाह पर या विवाह के समय जो भी उपहार दिए जायें उसकी एक सूची बनाई जाये, वह सूची इस कानून द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार बनाई जाये। उपहार ऐसे हों जो रीति रिवाज के अनुसार हो और इनकी कीमत उपहार देने वाले या जिसकी ओर से उपहार दिए जा रहे हों, के आर्थिक स्तर से अधिक न हो ।

उपहारों के संबंध में यह प्रावधान कि इनकी कीमत देने वाले की हैसियत से अधिक न हो दहेज विरोधी कानून को बेअसर कर देता है क्योंकि दहेज सदैव ही तोहफों के रूप में दिया जाता रहा है और यह निर्धारित करना भी मुश्किल होता है कि उपहार रीति रिवाज के अनुकूल, अथवा देने वाले की

आर्थिक स्थिति के अनुकूल हैं या नहीं ।। अतः इस प्रकार जो कानून दहेज ल- व देने के विरोध में हैं वह किसी भी उपहार लेने वा देने को स्वीकार करता है, चाहे उपहारों का मूल्य कुछ भी क्यों ना हो ।। अतः यह विरोधात्मक प्रावधान दहेज प्रथा को रोकने में क्रियाशील साबित नहीं हुआ ।।

3. इस कानून में एक संशोधन यह भी किया गया कि इस कानून के अंतर्गत अभियोग लगाने के लिये राज्य सरकार की स्वीकृति लेना अनिवार्य नहीं रहा ।। संतप्त व्यक्ति स्वयं मजिस्ट्रेट के सामने अपनी शिकायत दर्ज करा सकता है इसके अतिरिक्त कोई भी मान्यता प्राप्त कल्याणकारी संगठन या संस्था भी दहेज संबंधी शिकायत दर्ज करा सकती है ।। इस प्रावधान से अवश्य ही उन माता पिता को कुछ राहत मिली है जो पुत्री के अहित हो जाने के भय से शिकायत दर्ज कराने से डरते थे ।।

इस कानून के अंतर्गत दहेज देने या लेने वाले के लिय सजा निर्धारित की गई है ।। अपराधी को कम से कम 6 माह से लेकर 2 वर्ष की अवधि की कैद और दस हजार रुपये तक या दहेज की कीमत की राशि, जो भी अधिक हो जुर्माना किया जा सकता है ।।

सरकार दहेज की बुराई को कड़ी कानूनी कार्यवाही द्वारा समाप्त करना चाहती है ।। अगस्त 1986 में इस संबंध में संसद ने (संशोधन) विरोध बिल पास किया है ।। जिसके अनुसार दहेज संबंधी अपराध की जमानत नहीं हो सकती है और इसके लिये सज़ा की अवधि बढ़ाकर कम से कम पांच वर्ष की कैद और 15 हजार रुपये जुर्माना कर दिया गया है।। इसी बिल के पास होने के कुछ दिन बाद खन्डवा म.प्र. में एक परिवार के 6 सदस्यों का, जिसमें पांच महिलाएं थी, एक युवा पत्नी को जलाने के अपराध में प्राण दंड दिया गया ।।

दहेज विरोधी कानून के संशोधन करते साथ साथ सरकार ने महिलाओं पर दहेज व अन्य कारणों से अत्याचार रोकने संबंधी और भी कदम उठायें हैं जो निम्नलिखित हैं :

1. दण्ड विधान (दूसरा संशोधन) अधिनियम 1983
2. परिवार न्यायालयों की स्थापना अधिनियम 1984
3. पुलिस ढाँचे में महिलाओ की शिकायते सुनने के लिये "विशेष सैल" की स्थापना ।

1. दण्ड विधान (दूसरा संशोधन) अधिनियम 1983 : महिलाओ के प्रति बढ़ती हिंसा को रोकने के लिये सरकार ने यह कानून बनाया है । इस कानून में महिलाओ के प्रति पति अथवा उसके संबंधियों द्वारा की गई हिंसा की नई परिभाषा दी गई है । इसमें कहा गया है कि जानबूझ कर किया गया ऐसा कोई भी व्यवहार जो स्त्री को आत्महत्या करने की ओर अग्रसर करें या उसे शारीरिक अथवा मानसिक चोट पहुंचाये, वह व्यवहार हिंसात्मक कहलायेगा । इसके अतिरिक्त संपत्ति की मांग की पूर्ति के लिये महिला को तंग करना भी उसके प्रति हिंसा कहलायेगी।

इस प्रावधान से पति या उसके संबंधियों द्वारा महिला को आत्म हत्या के लिये उकसाने वाले केसों की जांच करने मे सहायता मिलेगी। आज दहेज की मांग से दुखी होकर अनेक विवाहित महिलाएं आत्महत्या का रास्ता चुन रही है।

2. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984 : इस अधिनियम में पारिवारिक न्यायालय स्थापित करने का प्रावधान है । इन न्यायालयों को वैवाहिक झगड़े सुलझाने का काम सौंपा गया है । ये न्यायालय इस उद्देश्य से बनाये गये है कि विवाह संबंधी विवादों में आपसी समझौते का तरीका अपना कर इन झगड़ों पर जल्दी निर्णय लिया जा सके । इन न्यायालयों को यह भी अधिकार है कि ये आवश्यकतानुसार विशेषज्ञों सामाजिक कार्यकर्ताओं, मान्यता प्राप्त संस्थाओं, मनोवैज्ञानिकों आदि से आवश्यक सहायता ले सकते है। इस प्रकार के कोर्ट स्थापित करने के लिये महिला संस्थाओं ने बड़ी मांग की थी। ये कोर्ट दोनों पक्षो में सुलह कराने का प्रयास करेंगे ।

इस प्रकार की व्यवस्था से महिलाओं को कितना लाभ पहुंचेगा, कहना कठिन है क्योंकि जब कभी इस प्रकार के झगड़े होते हैं और दो पक्षों में सुलह कराई जाती है, तो यह देखने में आता है कि समझौता स्त्री को

ऊपर दवाब डालकर कराया जाता है और उसकी कीमत औरत को ही देनी पड़ती है । औरत को पुनः अनचाहे विवाह बंधन में धकेल दिया जाता है ताकि विवाह बंधन न टूटे, बच्चों का हित बना रहे । औरत इस प्रकार के समझौते मे वापस विवाह की बेड़ी में जकड़ दी जाती है, जहां उसे शारीरिक व मानसिक यातनाएं झेलनी पड़ती हैं । समाज के इस प्रकार दृष्टिकोण व व्यवहार के कारण ही औरतों पर घरेलू ताड़ना, दहेज संबंधी मृत्यु और आग लगा कर जलाने की घटनाएं दिन पर दिन घटित हो रही हैं।

3. पुलिस ढाँचे में महिलाओं की शिकायतें सुनने की एक ''विशेष सैल'':

महिलाओं के प्रति हिंसा कम करने के उद्देश्य से सर्वप्रथम दिल्ली में यह ''सैल'' डिप्टी कमिश्नर आफ पुलिस श्रीमती कंवल जीत देओल की अध्यक्षता में जनवरी 1983 में स्थापित किया गया था । यहां पर महिलाओं के प्रति न केवल दहेज संबंधी क्रूर व्यवहार के मामलों की छानबीन की गई वरन परिवार के भी विभिन्न प्रकार के अत्याचार तनाव व घरेलू शांति भंग करने संबंधी किस्सो की भी जांच पड़ताल की गई। पहले वर्ष में 135 केसों की जांच की गई जिनमें 70 केस दिल्ली के बाहर के थे । श्रीमती देओल, जिनकी अध्यक्षता में यह सैल बनाई थी, के अनुसार दिल्ली में वर्ष 1985 में आग से जलने वाली महिलाओं की संख्या में 30% की स्पष्ट कमी आई है । (टाइम्स ऑफ इंडिया दिनांक 9.1.1984)

पुलिस व न्यायाधीशों का रूख :

कानून कितने ही कठोर क्यों न बना दिये जायें किंतु जब तक कानून को पूर्ण संरक्षण पुलिस एवं न्यायाधीशों द्वारा न दिया जाये, कानून का कोई महत्व नहीं रह जाता । कई बार पुलिस की लापरवाही , ग़ैर ज़िम्मेदारी और अपराधी का साथ देने की शिकायतें सामने आती हैं । न्यायालयों ने भी कई बार पुलिस की कानून का उल्लंघन करने के संबंध में निंदा की है । स्पष्ट गवाह और सबूत मौजूद होने पर भी पुलिस अपराधी को बच निकलने में मदद देती है । इस संबंध में स्टेट्समैन

दिनांक 13.6.1986 में छपी घटना इस प्रकार है।

दिल्ली में सपना के पति मनमोहन गलहोत्रा व सास ससुर सपना पर निरंतर दवाब डालते रहे कि वह अपने मायके से कार लेकर आये। इस बात को लेकर आये दिन विवाद होता और सपना को लताड़ा जाता। बार बार सपना से यह कहा जाता कि यदि तुम कार नहीं ला सकतीं तो गंदेनाले मे डूब कर मर जाओ। सपना के लिये जब अत्याचार असह्य हो गये तो वह सचमुच एक सुबह 10.5.86. को गंदे नाले में कूद कर मर गई। उसकी लाश मृत्यु के कुछ घंटों के बाद घर से लगभग दो किलोमीटर दूर किंग्ज़वे कैंप के गंदे नाले में बरामद हुई। सपना के भाई केवल कृष्ण मनचंदा को उसके पति एवं ससुराल वालों की बातों मे संदेह हुआ। लाश मिलने और घरेलू नौकर की गवाही हो जाने पर भी जब मृत्यु के दिन ही केवल कृष्ण मनचंदा ने पुलिस में प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफ़. आई. आर.) दर्ज कराई तो पुलिस ने इस केस को दहेज कानून के अतंर्गत एक साधारण केस की तरह दर्ज किया जब कि इस केस में मृत्यु के लिये उकसाने संबंधी सभी तथ्य मौजूद थे। सपना के भाई इस कार्यवाही से संतुष्ट नहीं हुए। वे निरंतर न्याय के लिये प्रयास करते रहे और इस बीच दिल्ली के उपराज्यपाल से भी मिले। अंत में यह केस धारा 306 के अंतर्गत दर्ज किया गया और सपना के पति व ससुर को गिरफ्तार कर लिया गया।(स्टेट्स मैन 13·6·1986)

पुलिस द्वारा अपराध को ठीक दर्ज न करने व समय पर सही छानबीन न करने के कारण अनेकों ससंगत साक्ष्य नष्ट हो जाते हैं। इस संबंध में कई दहेज से हुई मृत्यु के शिकार के अभिभावकों ने पुलिस की निष्क्रियता के प्रति याचिका दायर की है।ऐसे मामलों पर न्यायालयों ने पुलिस को अपना काम कानून के दायरे के भीतर करने और सही शिकायत दर्ज करने के आदेश दिए हैं। यह भी देखने में आता है कि कई बार बहुओं को जलाने संबंधी प्रथम सूचना रिपोर्ट अपर्याप्त होती है। सूचनाएँ एकत्रित करने के लिए पूर्ण प्रयास नहीं किया जाता, केसों को दुर्घटना मानकर समाप्त कर दिया जाता है, शव परीक्षा नहीं होती, मृत्यु की परिस्थिति की छानबीन नहीं होती, स्थल के फोटो या फोरेंसिक विशेषज्ञों

की सहायता से उंगलियों के निशान नहीं लिए जाते ।। मृत्यु पूर्व मृतक के बयान भी उचित ढंग से नहीं लिये जाते ।। इन सब कारणों से न्याय मिलने में काफी कठिनाई हो जाती हैं ।। विधिपूर्वक दर्ज किया गया मृत्यु पूर्व दिया गया बयान फैसले के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है ।। मृत्युपूर्ण बयान को मात्र किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष दर्ज करना काफी नहीं है ।। उस समय किसी मेडिकल आफिसर द्वारा बुलाया गया दंडाधिकारी भी उपस्थित होना ... महिला संगठनों ने मांग की हैं कि मृत्यु पूर्व बयान देने के समय वधू के परिवार का कोई सदस्य और महिला डाक्टर भी उपस्थित होनी चाहिए ।। इन उपायों से सच्चाई सामने आने में आसानी होने के साथ साथ न्याय/निर्णय लेने में भी अधिक समय नहीं लगता ।।

राज्य न्यायालयों एवं उच्चतम न्यायालय ने दहेज के विरोध में अनेकों महत्वपूर्ण फैसले देकर महिलाओं के प्रति बढ़ते हुए अत्याचार को रोकने मे बड़ा योगदान दिया है ।। दिल्लीके अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश एस. एस. अग्रवाल ने 1985 में सुधा गोयल की दहेज संबंधी मृत्यु के संबंध में उनके पति एवं अन्य अपराधियों को मृत्यु दंड दिया ।। इसी प्रकार पूना के अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने मंजुश्री काण्ड के मुख्य दोषी को मृत्यु दंड का फैसला दिया।। उच्चतम न्यायालय का भी यह मत रहा है कि वधू को जलाने या दहेज संबंधी मृत्यु के केस में मृत्यु दंड न्यायोचित है ।। उनकी दृष्टि में इस प्रकार के अपराध असामाजिक हैं और ये कत्ल जघन्य है।। अतः जिन अपराधों में दहेज के लालच में दुबारा शादी की जाती हैं या दूसरी औरत से शादी करने के लिए पहली पत्नी को मार दिया जाता है उसको भी मृत्यु दण्ड दिया जाना चाहिए।।

उच्चतम न्यायालय ने इस कानून के अंतर्गत दहेज मांगने वाले को भी अपराधी ठहराया हैं ।। उच्च न्यायालय ने जब अपने एक फैसले में दहेज मांगने वाले एक पति को अपराधी घोषित कर दिया तो पति ने दलील दी कि दहेज के लिए केवल माँग,, जहां दहेज दिया भी न गया हो,, दहेज रोकने के कानून के अंतर्गत अपराध नही है ।। उच्चतम न्यायालय ने उसकी प्रार्थना ठुकराते हुए आदेश दिया कि कानून के अंतर्गत सम्पत्ति

अथवा बहुमूल्य प्रतिभूति माँगना मता है । क्योंकि यदि माँग पूरी कर दी गई तो वह अपराध बन जाता है । इस कानून का उद्देश्य ही दहेज की माँग को कमजोर कर देना है । न्यायालय ने बताया कि यह रूख ले लेना कि दहेज की माँग अपराध नहीं है और अपराध तब ही हो सकता है जब दहेज की पुनः माँग की जाये और उस माँग को स्वीकार कर लिया जाये, सर्वथा अप्रमाणिक है ।। कानून की धारा 4 (सैक्शन – 4) के अनुसार सम्पत्ति अथवा बहुमूल्य प्रतिभूति की मांग की यदि पूर्ति कर दी जाये तो यह धारा 3 व धारा 2 के आधीन अपराध बन जाती है ।।

इस प्रकार के उच्चतम न्यायालय के साहसिक निर्णय न केवल दहेज विरोधी कानून को लागू करने में मदद करते हैं वरन् महिलाओं व महिला संस्थाओं और सामाजिक कार्यकर्ताओं को इस बुराई से लड़ने में साहस भी प्रदान करते हैं।

अध्याय–7

इस समस्या से कैसे निपटें ?

इस समस्या से कैसे निपटें :

दहेज संबंधी मृत्यु के आंकड़े चौका देने वाले हैं । श्री पी. चिदाम्बरम भूतपूर्व गृह राज्य मंत्री ने जुलाई 1986 में राज्य सभा को बताया कि 1980 से 2,137 दहेज मृत्यु की रिपोर्ट प्राप्त हुई है । वर्ष 1984 से उत्तर प्रदेश से सबसे अधिक संख्या में दहेज मृत्यु की सूचना प्राप्त हुई है । यह संख्या 615 है । इसके बाद महाराष्ट्र है जहां 292 मृत्यु हुई हैं। हरियाणा से 217, पंजाब से 78, राजस्थान से 88 व कर्नाटक से 81 मृत्यु के समाचार दो वर्षों में मिले हैं। (हि. टाइम्स दिनांक 24–7–1987)।

दहेज कानून कितने भी कठोर क्यों न बना दिए जायें कानून की सुरक्षा को लागू करने के लिये कितने भी साधन क्यों न जुटा दिए जायें इस जघन्य अपराध एवं विकट समस्या का समाधान तब तक नहीं हो सकता जब तक समाज की मूल मान्यताओं का परंपराओं में आवश्यक परिवर्तन नहीं लाया जायेगा । समाज में ऐसी शक्तियाँ विकसित करने की आवश्यकता है, जो समाज के सोचने समझने की दिशा व्यवहार में परिवर्तन ला सकें। जो लोगों में जागृति ला सके और महिलाओं को समाज में उचित दर्जा दिला सकें। इस दिशा में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है । मां बाप का पुत्रों एवं पुत्रियों के प्रति व्यवहार में परिवर्तन लाना भी बहुत आवश्यक है । पुत्री को स्वयं के विषय में अपनी दृष्टि बदलनी होगी। इसके अतिरिक्त जनमानस में चेतना जागृत करनी होगी। सरकारी व गैर सरकारी संगठनो को मिल कर इस बुराई का अंत करना होगा ।

शिक्षा-शिक्षक व शिक्षा संस्थाओं द्वारा महिला सशक्तिकरण एवं दहेज विरोध

शिक्षा के माध्यम से समाज में नई मान्यताए जागृत की जा सकती हैं। शिक्षा सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को बल प्रदान करती है

शिक्षा के द्वारा एक व्यक्ति न केवल अपना व्यक्तित्व विकसित करता है वरन समाज को समझने व अपने सामाजिक कर्तव्यों के प्रति भी जागृत होता है|दहेज जैसी कुरीति से निबटने में महिलाओं का दर्जा ऊँचा उठाने में व महिला सशक्तिकरण में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है । शिक्षा के माध्यम से महिलाओं की सही छवि चित्रित की जा सकती है । उनमें आत्म विश्वास व साहस विकसित किया जा सकता है । उनमे विवेकपूर्ण ढंग से विचार करने की क्षमता बढ़ाई जा सकती है । उन्हें संगठित किया जा सकता है और महत्वपूर्ण निर्णय लेने के लिये तैयार किया जा सकता है।

शिक्षा के क्षेत्र में महिलाएं बहुत पिछड़ी हुई है, अतः शिक्षा का देशव्यापी होना आवश्यक है । इसके अतिरिक्त प्रौढ़ शिक्षा का भी विकास किया जाना चाहिए। हमारे देश में 15–35 वर्ष की अनेक महिलाएं अशिक्षित है। ऐसी अधिकतर महिलाएं मजदूरी करती हैं, खेतों पर काम करती है या अन्य धंधो में जुटी हुई हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि इन गहिलाओं के लिये प्रौढ़ शिक्षा इस प्रकार की हो जो न केवल उन्हें साक्षर बनाये बल्कि उनकी काम करने की क्षमता बढ़ाये

और उनकी आमदनी भी बढ़ाये । गांवों में छोटी लड़कियों को स्कूलो में इसलिए प्रवेश नहीं दिलाया जाता क्योकि उन्हें छोटे भाई बहनों की देखभाल करनी होती है, घर का काम करना होता है, ईंधन, चारा या पीने का पानी दूर जा कर लाना होता है । अतः गांवों में ऐसे कार्यक्रम शुरू किए जाने चाहिए। जिनसे उनकी कार्यक्षमता व आमदनी, दोनो बढ़ें। इसके अतिरिक्त माता पिता को भी पुत्रियों को शिक्षित करने के लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिए । यह उनकी कार्यक्षमता एवं आमदनी बढ़ाने संबंधी प्रशिक्षण देकर किया जा सकता है।

शिक्षा के पश्चात रोज़गार की संभावनाएं बढ़ाने की दृष्टि से स्कूलों की शिक्षा में भी हर स्तर पर कोई न-कोई व्यवसाय संबंधी प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए जो उस क्षेत्र व गाँव की आवश्यकताओं के अनुरूप हो। सर्टिफिकेट,डिप्लोमा या डिग्री स्तर के टेक्नीकल कोर्स के चुनाव के

अवसर महिलाओ को दिए जाने चाहिए। इसी प्रकार आई. टी. आई. पोलिटैक्नीक में भी व्यवसाय संबंधी प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए और कोर्स को क्षेत्र की आवश्यकता के अनुरूप परिवर्तित करना चाहिए। शिक्षा के पाठ्यक्रम मे महिलाओं का दर्जा व उनकी भूमिका के मसले व महिलाओं संबंधी कानून सम्मिलित किए जाने चाहिए। इस संबंध में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने प्रस्ताव रखा है कि स्नातक स्तर पर यह विषय आधार पाठ्यक्रम में रखे जाये। महिलाओं के संबंध में जानकारी प्रत्येक कोर्स मे जोड़ी जानी चाहिए। शोध कार्य उन विषयों पर भी किया जाये जिनसे महिलाओं के विषय में अधिक जानकारी मिल सके। शोध के लिये प्रयोग में आने वाले तरीकों व माप दण्डों में भी आवश्यकतानुसार परिवर्तन किए जाने चाहिए।

यह पाया गया है कि स्कूल की अनेक किताबों में महिलाओं को उनके सही रूप में प्रस्तुत नही किया गया है। किताबो में उन्हें परंपरागत रूप में घर गृहस्थी का काम करते दिखाया गया है जबकि वे आज अनेक क्षेत्रो मे पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिला कर काम कर रही है।

राष्ट्रीय शैक्षिक एवं अनुसंधान परिषद, दिल्ली ने अभी हाल ही में स्कूल पाठ्यक्रम की 365 पुस्तकों का मूल्यांकन किया है। इस रिपोर्ट के अनुसार जो शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है, अनेक पुस्तकों में लेखिकाओं व महिला पात्रों का उचित प्रतिनिधित्व नही किया गया है। केंद्र द्वारा पारित तथा प्रकाशित 104 पुस्तको में से 24 पुस्तको में लेखिकाओं का सही प्रतिनिधित्व नही किया गया है। 8 पुस्तकों में महिला पात्रों को सही रूप में प्रस्तुत नहीं किया है और 18 पुस्तकों के प्रसंग में महिलाओं की उचित भूमिका नहीं दर्शाई गयी हैं। इसी प्रकार एक राज्य की 23 में से 18 किताबों में लेखिकाओं को उचित प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया है। 3 पुस्तकों में महिला पात्रों को सही परिपेक्ष्य में प्रस्तुत नही किया गया है। वैयक्तिक प्रकाशकों की 50 पुस्तकों में से 48% पुस्तकें लेखिकाओं का और 32% पुस्तकें महिला पात्रों का सही प्रतिनिधित्व नहीं दर्शाती है। केंद्र द्वारा प्रकाशित 120 पुस्तकों में से 21 किताबों में महिला पात्रों का सही प्रतिनिधित्व नहीं प्रस्तुत

किया गया है । इसी प्रकार अन्य एजेंसियों की 68 पुस्तकों मे से 30 पुस्तकों में लेखिकाओं को और 42 पुस्तकों में महिला पात्रों को उचित रूप में प्रस्तुत नही किया गया है । पाठ्य पुस्तकों में यदि महिलाओं की सही छवि प्रस्तुत की जायेगी तो वह स्त्री पुरुष को समान स्तर पर कार्य करने के लिये प्रेरित करेगी। पाठ्यक्रम मे ऐसा प्रयास किया जाना चाहिए जिससे स्त्री पुरुष घर व बाहर का काम और बच्चों की देखभाल मिल कर करने की प्रेरणा प्राप्त कर सकें ।

शिक्षक व शिक्षा संस्थाओं का महिला सशक्तिकरण में विशेष महत्व है। सभी शिक्षकों का महिलाओं के संबंध में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। महिलाओं को समानता का दर्जा दिलाने में शिक्षक गति देने वाले की भूमिका अदा कर सकते है। छात्र व शिक्षक मिल कर महिला सशक्तिकरण संबंधी गीत, नाटक, नृत्य नाटिका प्रदर्शनी आदि का आयोजन शिक्षा सस्थाओं और उनके बाहर भी कर सकते हैं। इस प्रकार के कार्यक्रमों से महिलाओं के प्रति दहेज संबंधी अत्याचार पर काबू पाने के अतिरिक्त जन चेतना का भी विकास होगा । शिक्षा संस्थाओं मे महिला इकाई भी खोली जानी चाहिए जहां महिलाओं को उनकी विशेष समस्याओं के बारे में सुझाव दिए जा सके और पारिवारिक विवाद या अत्याचार की स्थिति संबंधी कानूनी सलाह दी जा सके।

पुत्री के प्रति माता पिता के व्यवहार में परिवर्तन

आज भी अनेक परिवार ऐसे है जो पुत्री के जन्म पर उदास हो जाते है। वे समझते है कि पुत्री परिवार के ऊपर एक बोझ है । हमारे समाज में लड़की को सदैव इस प्रकार देखा जा सकता है कि वह सदैव पुरुष के ऊपर आश्रित है, पुरुष ही उसे सहारा दे सकता है पुरुष ही उसे बाहर की दुनिया से संरक्षण दे सकता है और जीवन के हर मोड़ पर उसे पुरुष के कंधे की जरूरत है । इसके अतिरिक्त माता पिता पुत्री को पराया धन मानते है अतः पुत्र को बुढ़ापे का सहारा मान कर उसके ऊपर ही अपने संचित साधन व्यय करना उचित समझते हैं। आज स्थिति बदल रही है । लड़कियाँ हर क्षेत्र में बड़ी तेजी से आगे आ रही है । शिक्षा के क्षेत्र में

तो उन्होंने लड़कों से भी अधिक अच्छे स्थान प्राप्त किए है। आज लड़कियॉ अपरंपरागत क्षेत्रों में भी कार्यरत है । व्यापार और फैक्ट्री में भी वे खूब आगे बढ़ी है। कही कहीं तो पिता का व्यवसाय पुत्रियॉ ही चला रही है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि माता पिता पुत्रियों के प्रति अपना व्यवहार बदलें। पुत्री को भी पुत्र के समान अवसर प्रदान करे । पुत्र और पुत्री दोनों का समान रूप से पालन पोषण करें, समान शिक्षा उपलब्ध करायें और रोजगार के लिये भी समान रूप से प्रेरित करें। पुत्री को भी आत्मनिर्भर और आत्मविश्वासी बनाने के उतने ही अवसर प्रदान किए जाये जितने पुत्र को । दहेज को लेकर नारी पर हिंसा एक मुख्य कारण नारी का आत्म विश्वासी व आत्म निर्भर निर्भर न होना है । जहां पुत्री को पुत्र के समान व्यक्तित्व के विकास के अवसर व सुविधायें प्रदान की जायें वहां पुत्र को घर के कामकाज का प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए ताकि भविष्य में घर की देखभाल की ज़िम्मेदारी पति पत्नी दोनों मिल कर उठा सकें और सारा बोझ पत्नी पर ही न रहे

आज संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। विवाह के पश्चात अनेक पुत्र अपना घर अलग बसा कर रहना पसंद करते हैं। कारोबार के कारण भी पुत्रों को माता पिता से दूर स्थान पर रहना पड़ता है । अतः ऐसी स्थिति मे यह सोचना कि पुत्र बुढ़ापे का सहारा बनेगा पूर्णतः उचित नहीं है। यदि पुत्र या पुत्री एवं दामाद मिल कर माता पिता की देखभाल या उनका कारोबार देख सकते है, तो उसमें भेदभाव क्यों रखा जाये? अतः पुत्री को बचपन से ही आत्मनिर्भर बनने का प्रशिक्षण दिया जाना बहुत आवश्यक है ताकि वह अपना अस्तित्व समझ सके और रूढ़िवाद के परे अपने आप को अपने पिता या पति पर बोझ न समझ कर उनका सहारा समझें।

आज विवाह 'किसी भी कीमत' पर आवश्यक नहीं है :

आज समय बदल रहा है।कभी स्त्री की पहचान उसके परिवार से की जाती थी, और नारी जीवन की सफलता और पूर्णता मातृत्व को माना

जाता था। आज नारी के लिए अनेक द्वार खुल गये है। वह तेजी से आत्म निर्भरता की ओर बढ़ रही है। वह उच्च से उच्चतम शिक्षा प्राप्त कर सकती है। अपनी शिक्षा, शिक्षण व रुचि के अनुकूल कोई भी नौकरी या व्यवसाय कर सकती है। घर से दूर अन्य शहर में जाकर भी वह कोई कारोबार या रोजगार कर सकती है। बड़े शहरों में कामकाजी महिलाओं के लिये आवास गृहों की व्यवस्था की गई है जहां अकेली कामकाजी महिला परिवार से दूर सुरक्षित रह सकती है। आज समाज के प्रगतिशील वर्ग के विचारों में तबदीली भी दिखाई देती हे।आज कितनी ही विधवा व विवाह-विच्छेदित (तलाकशुदा) महिलाएँ बच्चों सहित अकेले घर में रह रही हैं।समाज ने उनकी स्थिति को समझा है और उन्हें अपना सहयोग दिया है, यद्यपि कई बार इन महिलाओं को अनेक कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ता है। बच्चों की देखभाल के लिये शहरों में शिशु पालन केंद्र भी स्थापित किये गये है। जहां कामाकाजी महिला अपने बच्चों को स्वस्थ वातावरण में सुरक्षित छोड़ सकती है।इस प्रकार की सुविधाओं से नारी को आत्मनिर्भर होने में और अपने प्रति सम्मान प्राप्त करने में काफी सम्बल मिला है। इसी प्रकार आज ऐसे आवास गृहों की भी आवश्यकता हैं जहां महिलाएं बच्चों के साथ सुरक्षित रह सकें।

विधवा अथवा विवाह विच्छेदित महिला के प्रति समाज में जो एक तिरस्कार की भावना थी उसमें भी धीरे – धीरे अंतर आ रहा है। आज यह स्थिति नहीं रही जब ऐसी महिलाओं की पुनर्विवाह की कोई संभावना न होती हो या उन्हें समाज स्वीकार न करता हो। आज समाचार पत्र पत्रिकाओं में अनेकों ऐसे वैवाहिक विज्ञापन मिलेंगे जिनमें एक विधवा अथवा विवाह विच्छेदित बच्चों सहित महिला के लिये वर की खोज की गई है।

दहेज हत्या में स्त्री का हाथ क्यों ?

आज यदि दहेज के लिये बहू पर अत्याचार होते है, उसे जला दिया जाता है, गला घोंट कर मार दिया जाता हे या किसी अन्य प्रकार से उसका कत्ल कर दिया जाता है तो उसमें केवल पति का हाथ नहीं होता। इसमें पति के मां बाप, भाई भाभी और बहनें भी सम्मिलित होती है। कहीं कहीं तो पति पत्नी के प्रति अत्याचार के लिये सहमत भी नहीं होता पर माता पिता धन के लालचमें उसे उकसाते है। माता पिता का आज्ञाकारी पुत्र षड़यंत्र में शामिल हो जाता है। वह केवल शामिल ही

नहीं हो जाता बल्कि उसका अंत भी स्वयं अपने हाथों कर देता है उसके लिये ऐसा करना सरल है क्योंकि वह वधू के सबसे अधिक निकट होता है और वधू परिवार के अन्य सदस्यों से अधिक पति पर विश्वास करती है।जब स्त्री ही स्त्री पर अत्याचार करती है या सास बहू का अंत करने का फैसला करती है तो कहा जाता है कि नारी ही नारी की दुश्मन होती है । वास्तव में यह कहना पूर्णतः उचित नहीं है । नारी यदि नारी पर अत्याचार करती है तो उसके अनेकों पेचीदा कारण होते हैं, जिनमें मुख्य हैं समाज की रूढ़िगत मान्यताएं जो स्वयं उसकी नहीं बल्कि पुरुष सत्तावाले समाज की बनाई हुई होती है । नारी का समाजीकरण इन्हीं मूल्यों एवं मान्यताओं के दायरे में होता हे । सास यदि बहू को जलाती है या मार डालती है तो इसलिए क्योंकि उसका बचपन व वैवाहिक जीवन सुखी नहीं था । उसे सिखाया गया था कि ''औरत महत्वहीन है'' ''उसको खत्म किया जा सकता'', ''औरत को पुत्र द्वारा ही ऊँचा दर्जा मिलता है,''आदि । इसके अतिरिक्त दूसरी औरतें भी उसे उकसाती हैं। और उस पर दबाव डालती है । उसे लगता है कि यही अवसर है जब वह उपभोग की वस्तुएं प्राप्त करने कीं अपनी चाह पूरी कर सकती है।

नारी नारी के प्रति कठोर इसलिए होती है क्योकि उसे तथ्यों की सही जानकारी नहीं होती । यदि औरत गर्भ में कन्या भ्रूण की समाप्ति का निर्णय करती है तो वह इसलिए कि वह बेटे की मां बनने का सम्मान प्राप्त करना चाहती है क्योंकि समाज में पुरूष को अहमियत दी जाती है। यदि उसे मालूम हो कि 1981 की जनगणना के अनुसार 1000 पुरुष के मुकाबले सिर्फ 937 महिलाएं थीं, नर बालक की अपेक्षा कन्याओ की मृत्यु दर इसलिए अधिक है क्योंकि कि उनके पालन पोषण पर उचित ध्यान नहीं दिया जाता है और उचित पौष्टिक आहार भी उपलब्ध नहीं होता, नारी की संख्या आने वाले वर्षों में यदि और भी कम हो गई तो समाज में महिलाओं के प्रतिहिंसा, छेड़छाड़, बलात्कार आदि बढ जायेंगे आदि, तो इस प्रकार के निर्णय वह कभी नहीं लेगी ।

अंतर्जातीय विवाह

जातीय विवाह प्रणाली ने दहेज की मांग को बहुत बढ़ावा दिया है

अपनी ही जाति में वर की खोज किए जाने के कारण न केवल चुनाव क्षेत्र सीमित हो जाता है बल्कि वर का मूल्य भी बढ़ जाता है । ऐसी स्थिति में अंतर्जातीय विवाह दहेज प्रथा की जड़ें कमजोर कर सकता है। यहां माता पिता एवं पुत्र पुत्री को अपने विचारों में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। इससे दहेज प्रथा की समस्या में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। इससे दहेज प्रथा की समस्या पर प्रहार तो होगा ही साथ ही साथ देश के विभिन्न प्रदेशों व भाषा–भाषी लोगों में परस्पर स्नेह व सम्मान की भावना पनपेगी।

विवाह संबंध स्थापन प्रक्रिया में पुत्री को सम्मिलित किया जाये

भारत मे अधिकतर विवाह पुत्री के अभिभावकों द्वारा तय किए जाते हैं। इस प्रकार के संबंधों मे बहुत से परिवार एक दूसरे के लिये पूर्णतः अपरिचित होते है। अतः परिवार के बारे में सही जानकारी प्राप्त करना कन्या व वर दोनो पक्षों के लिये कठिन होता है लड़की के माता पिता जब संबंध स्थापित करने की प्रक्रिया प्रारंभ करते हैं तो उसमें कई प्रकार के आर्थिक सामाजिक विषय सामने आते हैं जिससे परिवार व उसके विभिन्न सदस्यों के दृष्टिकोण का पता चलता है। कुछ विषय काफी जटिल होते हैं जिनमे परिवार के सदस्यों की मनोवृत्ति उभर कर प्रकट होती है । यह सब जानकारी भविष्य में विवाह संबंधों की मधुरता पर प्रकाश डालती है । प्रायः देखने में आता है कि विवाह संबंध स्थापित करने की इस प्रक्रिया में पुत्री को सम्मिलित नहीं किया जाता और माता पिता पुत्री से इन विषयों पर चर्चा नहीं करते । फलतः पुत्री को भावी ससुराल के वातावरण व वहां के सदस्यों के विषय में कोई जानकारी नहीं होती । विवाह के उपरांत सर्वथा अपरिचित परिवार में उसे सब कुछ नया तो लगता ही है साथ में बहुधा असामान्य भी । यह इसलिये अधिक होता है कि उसे परिवार के विचारों और तरीकों आदि की जनाकारी नहीं होती। जब कभी उसके प्रति अप्रत्याशित व्यवहार या अत्याचार किया जाता है तो उसे वह वस्तु स्थिति को समझ नहीं पाती कि यह सब उसके प्रति क्यों हो रहा है और न ही वह उस स्थिति का सामना करने के लिये अपने को तैयार कर पाती है अतः इस प्रकार की

स्थिति से निबटने के लिये यह आवश्यक है कि अभिभावक पुत्री को विवाह संबंध स्थापित करने की प्रक्रिया प्रारंभ से ही सम्मिलित करे ताकि यह समझ सके कि विवाह के बाद वह किस प्रकार के परिवार मे जाकर रहेगी और वह उस वातावरण के लिये स्वयं को तैयार कर सके।

जन संचार द्वारा जन चेतना का विकास

महिलाओ के प्रति अत्याचार के रूप मे पनपी दहेज प्रथा का विरोध केवल कानून बना कर या कानून लागू करके नहीं किया जा सकता इसके लिये जन चेतना का विकास होना बहुत आवश्यक है यह चेतना जन संचार साधनो द्वारा बहुत प्रभावपूर्ण ढंग से की जा सकती है। विकासशील समाज मे संचार साधन सूचना प्रसारित करने, नई मान्यताएं निर्धारित करने, व्यवहार में परिवर्तन लाने में व समस्याओं का हल ढूंढने मे बहुत प्रभावशाली रहे है। आज हमारे देश मे पुस्तकों, पत्रिकाओं, सिनेमा, रेडियो, टेलीविजन आदि के अधिकतर कार्यक्रमों में महिलाओ को पुरूष से निम्न स्तर का और भोग की वस्तु के रूप दर्शाया जाता है। उनको पारिवारिक रूप में दिखाया जाता है मानो उनके जीवन का उद्देश्य केवल विवाह और घर व बच्चों की देखभाल करना है । उन्हें गंभीर, कायर, लड़ाकू अंध विश्वासी, अज्ञानी, नासमझ और घर की दुनियां में सीमित रहने वाली दिखाया जाता है । इसके स्थान पर उन्हें सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों के फलस्वरूप विभिन्न प्रकार के कार्यों में रत दिखाया जाना चाहिए। आज समाज में अनेक परिवर्तन आ रहे हैं जिसके कारण नई आशाएं, नई आकांक्षाएं पैदा हो रही है। इन सबसे नये ढंग से समझौता करना होगा। अतः परिवर्तित स्थितियों में महिलाओं की क्या आवश्यकताएं है, वे किस प्रकार के कार्यों में लगी हैं, उनके विषय में जानकारी देनी चाहिए। महिलाओं को खेतों में कार्य करते, खानों और बागानों के काम करते, फैक्टरियों और दफ्तरों आदि में काम करने वाली के रूप में भी दिखाया जाना चाहिए। परिवार और देश की आर्थिकता के लिये उनका क्या योगदान रहा है इस संबंध में भी चर्चा होनी चाहिए।

सिनेमा आम जनता के लिये मनोरंजन का एक बहुत बड़ा और सस्ता साधन है । सिनेमा के माध्यम से आम जनता का ध्यान समाज में पनपी बुराइयो की ओर अधिक आसानी से दिलाया जा सकता है क्योंकि यह अधिक लोगों की पहुंच में है और इसका प्रभाव जल्दी पड़ता है किंतु अधिकतर व्यावसायिक सिनेमा महिलाओं को उपयोग की वस्तु के रूप में दिखाते है उनके समाज व देश के लिए किए गए योगदान को नहीं । यद्यपि इस दिशा मे कुछ परिवर्तन हुआ है । कुछ फिल्में ऐसी बनी है जिसमें महिलाओं के नए, रूप, नयी आकांक्षाओं और समाज की पारंपरिक मान्यताओं को चुनौतियॉ देते दिखाया हे किंतु ऐसी फिल्म गिनी चुनी ही है जन मानस को प्रभावित करने के लिये इस प्रकार की अधिक फिल्में बनाने की आवश्यकता है ।

दहेज के विष में एक फिल्म ''अग्निदाह'' दिनांक 13–6–1986 को दूरदर्शन पर प्रसारित की गई थी। इस फिल्म में दहेज के कई प्रश्न बड़े साफ तौर पर दर्शाये गये है। वे है क्या माता पिता को अपनी पुत्री की शादी उस घर में करनी चाहिए जहां दहेज की मांग पैसे अथवा वस्तु के बाद में की जा रही है क्या पुत्री को उस घर में रहने दिया जाये जहां विवाह के पश्चात भी दहेज की मांग के इरादे साफ दिखाई दे रहे हों? क्या लड़कियो को यह शिक्षा नहीं दी जानी चाहिए कि वे घर के कुछ विचित्र वातावरण को भाँप सकें ? क्या माता पिता को पुत्री के विवाह के बाद उसकी खैर खबर नहीं लेनी चाहिए ? क्यों लड़कियों को उनका विवाह संबंध स्थापित करने की प्रक्रिया में सम्मिलित नहीं किया जाता ताकि व समझ सके कि वे विवाह के पश्चात किस प्रकार के सदस्यों के बीच जाकर रहेंगी। यद्यपि इस फिल्म में बहू से छुटकारा पाने का सुनियोजित ढंग सुझाया गया है और दोषी ससुराल वालों को कोई भी सजा नहीं दी गई है और न उनकी ओर से पश्चाताप दर्शाया गया है तथापि यह फिल्मअन्यायेक सामाजिक प्रणाली पर प्रश्न चिह्न लगा देती है और जनता को स्वयं इस बुराई का समाप्त करने का हल ढूंढने के लिये सोचने पर मजबूर करती है ।

विज्ञापनों, पुस्तकों, पत्रिकाओ और परिपत्रों में भी महिलाओं को उनके सही रूप में प्रस्तुत नहीं किया जाता । कई विज्ञापन न केवल

महिलाओ की छवि धूमिल करते है बल्कि उनके शरीर के अंगों का अनुचित चित्रण भी करते है प्रायः इस प्रकार के चित्रण विज्ञापन की आवश्यकता भी नहीं होते। संचार माध्यम के इस रूख के प्रति न केवल महिलाएँ महिला संस्थाएँ बल्कि सरकार भी चिंतित है। इस समस्या से निबटने के लिये राज्य सभा में एक बिल प्रस्तुत किया गया हैं।

हिंदुस्तान टाइम्स दि 23.10.1986 के अंतर्गत पहली बार के दोषी पर दो वर्ष की सजा व दो हजार रूपये तक का जुर्माना और बाद में और अधिक सजा निर्धारित की गई है । यह बिल प्रदर्शित विज्ञापनों व प्रसारणों के दुष्प्रभाव से लोगों को बचाने के लिये लाया गया है । इस बिल के अंतर्गत महिला के शरीर या उसके किसी अंग के अभद्र प्रदर्शन को अपराध माना जायेगा । आशा है कि सरकार द्वारा उठाये गये ऐसे सुनिश्चित कदम महिलाओं की सही छवि प्रस्तुत करने मे सहायक होंगे।

महिला संगठनों की भूमिका

महिला संगठनो के लिये दहेज प्रथा एक बड़ी चुनौती है । इसके विरोध में महिला संगठनों को कठोरता से लड़ने की आवश्यकता है इस कार्य में वे अधिक सफल हो सकते है क्योकि महिलाओं के साथ उनका बहुत निकटता का संबंध होता है और वे महिलाओं की आवश्यकताओं और कठिनाइयों का सही अनुमान लगा सकते हैं । पिछले कुछ वर्षों से अनेकों नये महिला संगठनों का गठन हुआ है । इन नये संगठनों ने नारी की बदलती भूमिका को समझा हैं और उसे नये रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है । कुछ महिला संगठनों ने अत्याचार से पीड़ित स्त्रियों के लिये महिला केंद्र भी खोले हैं जहां उनकी समस्याओं पर सौहार्दपूर्वक विचार किया जाता है और उनका आत्मबल बनाये रखने का प्रयास किया जाता है ताकि वे अपना संघर्ष साहस पूर्वक और पूर्ण जानकारी के साथ लड़ सके । इस प्रकार के कुछ केंद्रों पर महिलाओं को कानूनी सलाह भी मुफ्त दी जाती हैं।

आज आवश्यकता इस बात की है कि महिला संगठन महिलाओं में साहस और विश्वास पैदा करें, उनके व्यक्तित्व का विकास करें ताकि वे समाज में आत्म निर्भरता एवं सम्मान का जीवन जी सकें । महिला

संगठन समाज की उन रूढ़ियों और मान्यताओं को समाप्त करने का प्रयास करें जो महिलाओं की प्रगति में बाधक हों । उनसे ऐसी आशा की जाती है कि वे समाज मे ऐसी दृष्टि पैदा करें जिससे समाज में स्त्री व पुरुष में समानता बढ़े । स्त्री पुरूष एक दूसरे की समस्या को समझे व एक दूसरे की प्रगति में सहायक हो। दहेज का एक मुख्य कारण असमानता है।

सरकार ने गैर सरकारी संगठनों व महिला संगठनों को महिलाओं के प्रति अत्याचारों की रिपोर्ट व छानबीन करने का अधिकार दिया है । सरकार के इस कदम से संगठनो को बहुत बल मिला है ।

देश के अन्य संगठनों का योगदान आवश्यक

दहेज जैसी भयंकर कुरीति का अंत केवल महिला संगठनों के संघर्ष से नहीं हो सकता । इसके लिए देश के अन्य मुख्य संगठनों का उनकी लड़ाई में सम्मिलित होना आवश्यक है । प्रायः देखने में आता है कि दहेज जैसी समस्या के विरोध में केवल कुछ ही संगठन आवाज उठाते हैं, प्रदर्शन करते है या संसद के सामने विरोध प्रकट करते हैं किंतु देश के अन्य संगठन जिनके पास शक्ति है, साधन है, आवाज नहीं उठाते चाहे इस प्रकार की घटनाओं से उसकी बेटी तक बची नही होती । अतः यह अत्यन्त आवश्यक हो गया है कि इस संघर्ष में देश के मुख्य संगठन जैसे ट्रैड यूनियन, सरकारी कर्मचारी यूनियन, आवासीय संगठन आदि सक्रिय रूप से सम्मिलित हों ।

प्रत्येक व्यक्ति के सहयोग की आवश्यकता

जब हम सती प्रथा, बहु–विवाह प्रथा जैसी कुरीतियों को दूर करने में सफल रहे तो क्या कारण है कि हम दहेज जैसी कुरीति को दूर करने में सफल नहीं होगे ? आज इस कुरीति का सामना स्त्री, पुरुष, वृद्ध, युवक, बच्चे सबको मिलकर करना होगा इस संघर्ष में प्रत्येक व्यक्ति का योगदान महत्त्वपूर्ण है । बेकसूर दुल्हन को दहेज के कारण जलते देखने

पर मानव मस्तिष्क पर कितना गहरा प्रभाव हो सकता है इसका अनुमान 27 वर्षीय श्री हरिप्रसाद के संघर्ष से लगाया जा सकता है जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय को इस छात्र ने अपने पड़ोस की सरिता को उसके पति द्वारा जलाते हुए देखा था । इस घटना के तीन महीने बाद सितम्बर, 1983 से अब तक वे अकेले ही देश के 18 राज्यों व 6 केंद्र शासित प्रदेशों का भ्रमण कर चुके है। इस बीच इन्होंने 40 दहेज विरोधी सैल स्थापित किए है और 40,000 युवकों के हस्ताक्षर दहेज ने लेने के संबंध में लिये हैं। इस अभियान का उनका उद्देश्य देश की अनेकों सरिताओं को बचाना है । (दि. टाइम्स 21–7–1986)

GLOSSARY

उपभोक्तावाद Consumerism

हिंदू सक्सेशन अधिनियम Hindu Succession Act

क्रय–विक्रय व्यवस्था Market Economy

सामाजीकरण Socialisation

एमनिओसेन्टसिस Amneocentesis

सुलह न करने योग्य Non-compoundable

पारिवारिक न्यायालय Family Court

हस्तक्षप्य Cogniozable

जमानत योग्य Bailable

एंड सोशल काउन्सिल), प्रन्यास परिषद् (ट्रस्टीशिप काउन्सिल), अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय (इंटरनेशनल कोर्ट ऑफ जस्टिस) तथा सचिवालय (सेक्रेटेरिएट)

महासभा के सभी सदस्य सदस्य-राष्ट्रों के प्रतिनिधि के रूप में होते है। प्रत्येक सदस्य-राष्ट्र महासभा में पाँच प्रतिनिधि तक भेज सकता है लेकिन मतदान के समय वह राष्ट्र एक ही मत देने का अधिकारी है। इसकी बैठक वर्ष में एक बार होती है। इसका सभापति एक वर्ष के लिए चुना जाता है। एक बार महासभा ने भारत की प्रतिनिधि श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित को अपना सभापति चुना था। इस सभा में सदस्य-राष्ट्र महत्त्वपूर्ण विषयों पर वाद-विवाद करते है। इसी सभा के सदस्यों में से भिन्न-भिन्न परिषदों के सदस्य नियुक्त किए जाते है।

सुरक्षा परिषद् संयुक्त राष्ट्र संघ की सबसे महत्त्वपूर्ण अंग मानी जाती है। इस में स्थायी तथा अस्थायी सदस्य होते है। स्थायी सदस्यों में अमरीका, रूस, ब्रिटेन, फ्रांस तथा राष्ट्रवादी चीन हैं। शेष दस अस्थायी सदस्य दो वर्षो के लिए महासभा द्वारा चुने जाते है। भारत कई बार इस परिषद् का सदस्य निर्वाचित हो चुका है।

आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् में 18 सदस्य होते हैं। ये तीन वर्ष के लिए महासभा द्वारा निर्वाचित होते है। इस परिषद् का उद्देश्य विभिन्न राष्ट्रों का आर्थिक तथा सामाजिक विकास करना है।

प्रन्यास परिषद् कुछ विशिष्ट प्रदेशों के शासन की देख-रेख व निरीक्षण करती है। इन प्रदेशों में कुछ तो वे हैं जो पहले लीग ऑफ नेशन्स से प्रशासित होते थे और कुछ द्वितीय महायुद्ध के बाद प्रशासन हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ के अंतर्गत आ गए हैं।

अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय में 15 न्यायाधीश होते हैं जो 9 वर्ष तक अपने पद पर रह सकते हैं। यह न्यायालय अंतर्राष्ट्रीय झगड़ों पर विचार करता है।

सचिवालय में संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्य-संचालन के लिए कर्मचारी वर्ग रहता है। इसका मुख्य प्रशासक महामंत्री (सेक्रेटरी जनरल) होता है। महामंत्री को सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर महासभा नियुक्त करती है। प्रशासनिक कार्यों के

अतिरिक्त उसका यह भी दायित्व है कि अंतर्राष्ट्रीय शांति भंग करने वाले मामलों की ओर सुरक्षा परिषद् का ध्यान आकर्षित करे। आजकल इसके महासचिव श्री ऊ थाँ है। ये बर्मा देश के निवासी हैं। इनको नेहरू शांति पुरस्कार भी मिल चुका है।

श्री ऊ थाँ

विशेष संस्थाएँ

संयुक्त राष्ट्र संघ के आर्थिक व सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अनेक विशेष संस्थाएँ बनाई गई हैं। ये संस्थाएँ आर्थिक व सामाजिक परिषद् के अंतर्गत कार्य करती है। इन संस्थाओं के नाम इस प्रकार हैं—

(1) अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन
(2) खाद्य और कृषि संगठन
(3) अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष
(4) अंतर्राष्ट्रीय नागरिक यातायात संगठन

(5) पुनर्निर्माण और विकास के लिए अंतर्राष्ट्रीय बैंक
(6) संयुक्त राष्ट्रीय शैक्षणिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन
(7) विश्व स्वास्थ्य संगठन
(8) अंतर्राष्ट्रीय शरणार्थी संगठन
(9) अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन

संयुक्त राष्ट्र संघ का सहयोग

भारत ने प्रारंभ से ही संयुक्त राष्ट्र संघ को हर संभव सहयोग प्रदान किया। इस विश्व संगठन के पास अपनी कोई सेना नहीं है लेकिन इसे अक्सर युद्ध विराम के प्रस्तावों को लागू कराने के लिए सैनिकों की आवश्यकता होती है। ऐसे अवसरों पर संयुक्त राष्ट्र संघ विभिन्न राष्ट्रों से सैनिक भेजने का अनुरोध करता है। भारत ने अनेक अवसरों पर अपने सैनिक भेजे और संयुक्त राष्ट्र संघ के साथ सहयोग किया। कोरिया के युद्ध में भारत ने डाक्टरों का एक दल युद्ध के घायलों की प्रारंभिक चिकित्सा के लिए भेजा था। भारत की निष्पक्षता से प्रभावित होकर उसे युद्ध-बंदियों से संबंधित आयोग का अध्यक्ष बनाया गया था। अमरीका के भूतपूर्व राष्ट्रपति आइजनहावर ने भारत की प्रशंसा करते हुए कहा था—"अभी हाल के वर्षों में किसी भी अन्य सेना ने कोरिया में भारतीय फौजों की अपेक्षा अधिक नाजुक और कठिन कार्य नहीं किया है। इन अफसरों तथा सैनिकों का कार्य भारतीय सेना की उच्चतम ख्याति के अनुरूप था। वे उच्चतम प्रशंसा के पात्र हैं।"

1954 में हिन्द चीन के युद्ध विराम का निरीक्षण करने के लिए जो आयोग नियुक्त किया गया था उसका भी अध्यक्ष भारत को ही बनाया गया। संयुक्त राष्ट्र के आदेश पर भारतीय सैनिक गाजा पट्टी और लेबनान में भी शांति स्थापित करने गए। भारतीय सैनिक अधिकारियों की देख-रेख में संयुक्त राष्ट्र की शांति सेना ने कई बार काम किया है।

हमारे देश ने सभी पराधीन देशों की स्वाधीनता के पक्ष में और जातीय भेद-भाव के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र संघ में अपने विचार व्यक्त किए। हमने इंडोनेशिया, लीबिया, ट्यूनीशिया, मलाया, घाना आदि देशों की स्वतंत्रता का समर्थन किया।

1960 में महासभा ने पराधीन देशों को स्वतंत्रता दिए जाने से संबंधित एक घोषणा-पत्र जारी किया। इस घोषणा-पत्र को कार्यांवित करने के लिए जो समिति बनी उसका प्रथम अध्यक्ष भारत का प्रतिनिधि बनाया गया। दक्षिणी अफ्रीका में अश्वेत व्यक्तियों के मानवीय अधिकारों के अपहरण के विरोध में भारत ने महासभा में अनेक बार प्रश्न उठाए और विश्व का ध्यान इस जातीय भेद-भाव को समाप्त करने की आवश्यकता की ओर आकर्षित किया।

संयुक्त राष्ट्र संघ के अंतर्गत एक निःशस्त्रीकरण सम्मेलन गठित किया गया है। इसके सदस्य 18 राष्ट्रों के प्रतिनिधि हैं जिनमें भारत भी है। इसमें भारत ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। हमने सदा इस पक्ष का समर्थन किया है कि आणविक शक्ति का केवल मानव-कल्याण के लिए प्रयोग किया जाए, युद्ध के अस्त्र-शस्त्र बनाने के लिए नहीं। भारत की प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने संयुक्त राष्ट्र संघ के रजत-जयंती समारोह के अवसर पर महासभा में निःशस्त्रीकरण को वक्त की माँग बताते हुए कहा था, "इस समय हथियारों के उत्पादन पर जो धन खर्च किया जा रहा है, यदि उसका कुछ हिस्सा भी कम कर दिया जाए तो उससे मानवता के कल्याण और भलाई के असीम साधन उपलब्ध हो जाएँगे जिनसे आर्थिक विषमता को कम करने में काफी सहायता मिलेगी।"

संयुक्त राष्ट्र संघ से भारत को लाभ

भारत ने जहाँ एक ओर संयुक्त राष्ट्र संघ को अनेक प्रकार से सहयोग प्रदान किया है वहाँ दूसरी ओर भारत को भी इससे बहुत सहायता मिली है। संयुक्त राष्ट्र संघ की विशेष संस्थाओं ने भारत की सामाजिक, शैक्षिक, तकनीकी, आर्थिक तथा वैज्ञानिक उन्नति में सराहनीय योग दिया है।

खाद्य एवं कृषि संगठन ने उत्तर प्रदेश में तराई के प्रदेश को कृषि योग्य बनाने में सहायता दी है। राजस्थान में रेगिस्तान को फैलने से रोकने तथा इसे हरा-भरा बनाने में भी यह संगठन प्रयत्नशील है। भारत में मत्स्य-उद्योग तथा चावल-उत्पादन के अनुसंधान केन्द्र भी स्थापित किए गए हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भारत में जन-स्वास्थ्य के लिए प्रशंसनीय कार्य किए हैं। इसके माध्यम से भारत को मलेरिया-उन्मूलन के लिए डी० डी० टी० तथा टी० बी० (तपेदिक) के निवारण के लिए बी० सी० जी० वैक्सीन पर्याप्त मात्रा में मिल सकी है। इसने चिकित्सा के क्षेत्र में उच्च अध्ययन हेतु अनेक छात्र-वृत्तियाँ भी दी हैं। इसने बच्चों के स्वास्थ्य के लिए मातृ एवं बाल कल्याण संबंधी अनेक प्रकार की सहायता व सुविधाएँ भी दी हैं।

भारत को शैक्षणिक व सांस्कृतिक क्षेत्र में भी संयुक्त राष्ट्र संघ से काफी मदद मिली है। इसकी विशेष संस्था 'यूनेस्को' (UNESCO) ने भारत में शिक्षा-प्रसार में यथेष्ट योगदान दिया है। इसी की सहायता से दिल्ली स्थित जामिया मिल्लिया ने प्रौढ़ों को साक्षर बनाने तथा उनके योग्य साहित्य तैयार कराने का कार्य प्रारंभ किया है। तकनीकी सहायता देने, अध्यापकों एवं छात्रों का विभिन्न देशों से आदान-प्रदान होने तथा सांस्कृतिक संपर्क बढ़ाने—इन सभी कार्यों में भारत को यूनेस्को से सहायता मिली है।

भारत के औद्योगिक विकास में भी संयुक्त राष्ट्र संघ ने विभिन्न तरीकों से सहायता पहुँचाई है। पंचवर्षीय योजनाओं के लिए अंतर्राष्ट्रीय बैंक से ऋण प्राप्त हुए हैं। अनेक योजनाओं को सफल बनाने के लिए हमें तकनीकी विशेषज्ञों का परामर्श भी उपलब्ध हुआ है।

इस प्रकार भारत संयुक्त राष्ट्र संघ की सहायता से बराबर अपने आदर्शों और उद्देश्यों की पूर्ति करने में लगा है। साथ ही वह संघ को भी अपना पूरा सहयोग प्रदान कर रहा है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि संसार के देश संयुक्त राष्ट्र संघ से लाभांवित हुए हैं। भारत के सुझाव पर 1965 के वर्ष को संयुक्त राष्ट्र संघ के 'अंतर्राष्ट्रीय सहयोग वर्ष' के रूप में मनाया गया। वास्तव में आधुनिक विज्ञान, कला, तकनीकी प्रगति आदि अब राष्ट्रीय सीमाएँ पार कर चुकी हैं। अतः अंतर्राष्ट्रीय सहयोग में भी मानव-कल्याण निहित है।

अभ्यास के प्रश्न

1) संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना क्यों हुई ?
2) सयुक्त राष्ट्र सघ के मुख्य अंगों का संक्षिप्त परिचय दो ।
3) संयुक्त राष्ट्र संघ की विशेष संस्थाओं में से किन्ही चार के नाम व कार्य लिखो ।
4) भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ को किस प्रकार सहयोग प्रदान किया ?
5) भारत को सयुक्त राष्ट्र सघ का सदस्यता से क्या लाभ हुए ?
6) निम्नलिखित में से कौन संयुक्त राष्ट्र संघ की विशेष संस्था हैं—
   i) सुरक्षा परिषद्
   ii) अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय
   iii) प्रन्यास परिषद्
   iv) विश्व स्वास्थ्य संगठन
   v) आर्थिक तथा सामाजिक परिषद्
7) संयुक्त राष्ट्र सघ से सबधित जो तथ्य सही हों उनके आगे (✓) का चिन्ह लगाओ—
   क) इसके पास एक बड़ी सेना है ।
   ख) इसके अध्यक्ष को राष्ट्रपति कहते है ।
   ग) सुरक्षा परिषद् में पाँच सदस्य स्थायी है ।
   घ) अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष इसकी विशेष सस्था है ।
   ङ) अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय इसका प्रमुख अग है ।

कुछ करने को

1) विभिन्न देशों के डाक-टिकट एकत्र करो ।
2) विश्व के मानचित्र में संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रमुख सदस्य-राष्ट्रों को दिखलाओ ।
3) किसी दूसरे देश के निवासी को एक पत्र लिखो और उस देश की भाषा, वेश-भूषा आदि की जानकारी दो ।
4) संयुक्त राष्ट्र संघ के दिल्ली कार्यालय से उनके प्रकाशनों की सूची उपलब्ध करो ।

hinder shins a half dozen times.

The eggs of katydids are laid in the fall and hatch in the spring. Their egg-placers are remarkable to see. Though hollow, all suggest some sort of weapon, resembling, in the different kinds, pruning knives, sickles, scimitars, swords, and daggers. The first three of these designs are flat and curved affairs of varying lengths, carried by such as the green angular-winged, oblong-winged, bush, and meadow katydids. The swords, as long as their owners' bodies, are worn by the sword-bearing cone-headed katydids, also meadow dwellers. And the daggers, belonging to the brown and the albino cave-katydids, are actually diggers for planting eggs in the earth.

Tree, bush, and meadow katydids place their precious packages in portions of the plants they live upon. Some, like the cone-heads, lay between the stems and sheaths of meadow grasses. Some, like the broad-wings, use crevices in the soft bark of trees. Others, such as the angular-wings, embroider the edges of leaves or twigs with rows of cucumber-seed-shaped eggs neatly overlapping. These are held in place by just the right amount of glue, which substance is exuded in the egg-laying of all katydids and crickets, though in no such quantity as with grasshoppers.

The eggs of the fork-tailed bush katydids are very flat at first. They have to be because they are placed between the upper and lower layers of a single leaf. Grasping the leaf with her forefeet, the bush-katydid bites away some of the rim. Then, holding her egg-placer in her jaws to guide it, she does a job more difficult than threading a fine needle, after many misses finally getting the egg-placer between the two halves of the leaf. An egg is released and the placer withdrawn. Sometimes she puts as many as five eggs in a row before selecting a new location. The flat eggs soon swell, producing little bulges as the leaf heals over them.

The cave-katydids, pale with brown markings, which live in one of my insect cages, started laying eggs in August and were still at it in the middle of October. When about to lay, a female scrabbles at the dirt in front of her, pushing it back beneath her with forefeet, farther back with her middle feet, and kicking it out behind with her big hind legs. She does not appear to be trying to dig a hole. After a few nervous minutes of this, she reaches out with all six legs, grasping bits of rubble as though to guy herself down like a tent in a storm, and brings her dagger egg-placer (which usually points backward like a tail) up under

her till it points straight down.

Twisting and turning her body, she drills into the loam till all of the egg-placer is out of sight. She raises it and lowers it six or seven times, still twisting, feeling for the best spot between dirt particles below for
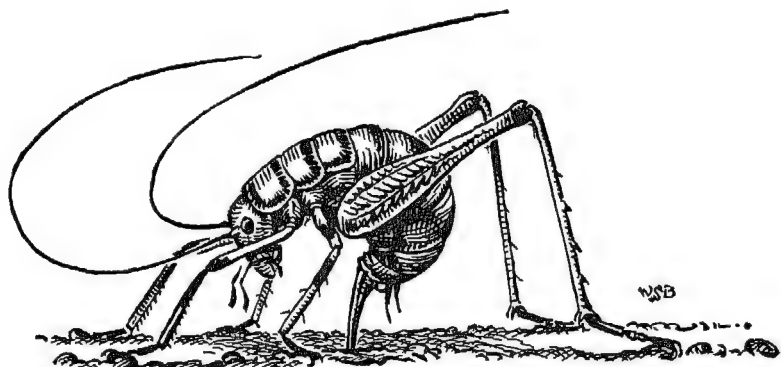
Cave-Katydid drilling to plant an egg--

the single egg. Satisfied at last, with egg-placer thrust clear down, she sits very still for half a minute. Presently the two little tails at the end of her body quiver slightly. Then up she gets, for the slender egg is now in the ground, well planted.

As her egg-placer moved in and out of the earth like the needle of a sewing machine, she was herself in fact a sowing machine, planting katydid seed. An inch away she does it all over again, though with far less

frantic scrabbling at the start. She may deposit half a dozen eggs this way and several more upon the morrow. This performance takes place in August, September, and October, and for all I know it may happen again before a real hard freeze sets in. Thus, though these cave-katydids lay few eggs at a time, they do so several times a season. It is possible that, living somewhat sheltered lives, such grasshopper relatives do not die after one season, but survive the winter and lay more eggs the next year.

Their notion of a cave is any dark enclosure, preferably a trifle damp, and they leave their forest nooks to live in our cellar. They dash into a mouse hole when I open the tool closet door, a dangerous refuge if the mouse should feel like eating them. One even went up through the walls to the attic and, trying the bait in a circular mouse trap there, ended its career in strange surroundings.

These cave-katydids are most pugnacious. On their long hind legs are large and wicked-looking spurs, used by the males in some fancy dueling. This they carry on in rounds, often half an hour long, with rest periods for eating mushrooms or mildewed fruit and such choice morsels, and for seeking favor with the females.

Sometimes when one male, walking around an ob-

ject, comes suddenly face to face with another, he will charge, fiercely striking out with his front feet as if to seize the other just behind the head. The other never faces this style of attack but leaps as though for his very life.

But if, as happens most of the time, each sees the other from a little distance so that there can be no element of surprise, they go at each other rear end to, fencing with their great hind legs. Apparently they see very well what they are doing with their compound eyes, and I notice they are careful to keep their thin long delicate feelers forward and out of harm's way.

They don't kick at each other as the females sometimes do, but jab savagely as though to tear the tender and thinly armored body of the rival with their big sharp barbs. On these same spikes each catches and parries the thrusts of the other, if not on the first and longest barbs, then farther up the shins on smaller ones, where also the power of the rival's stroke is partly spent already, as a rule.

But once in a while a jab is so swift and furious that the striking leg zips past the other fellow's guard and even rakes at his head for the fraction of a second, endangering the feelers, often more important to a cave-katydid than its eyes. "Never turn your back on an
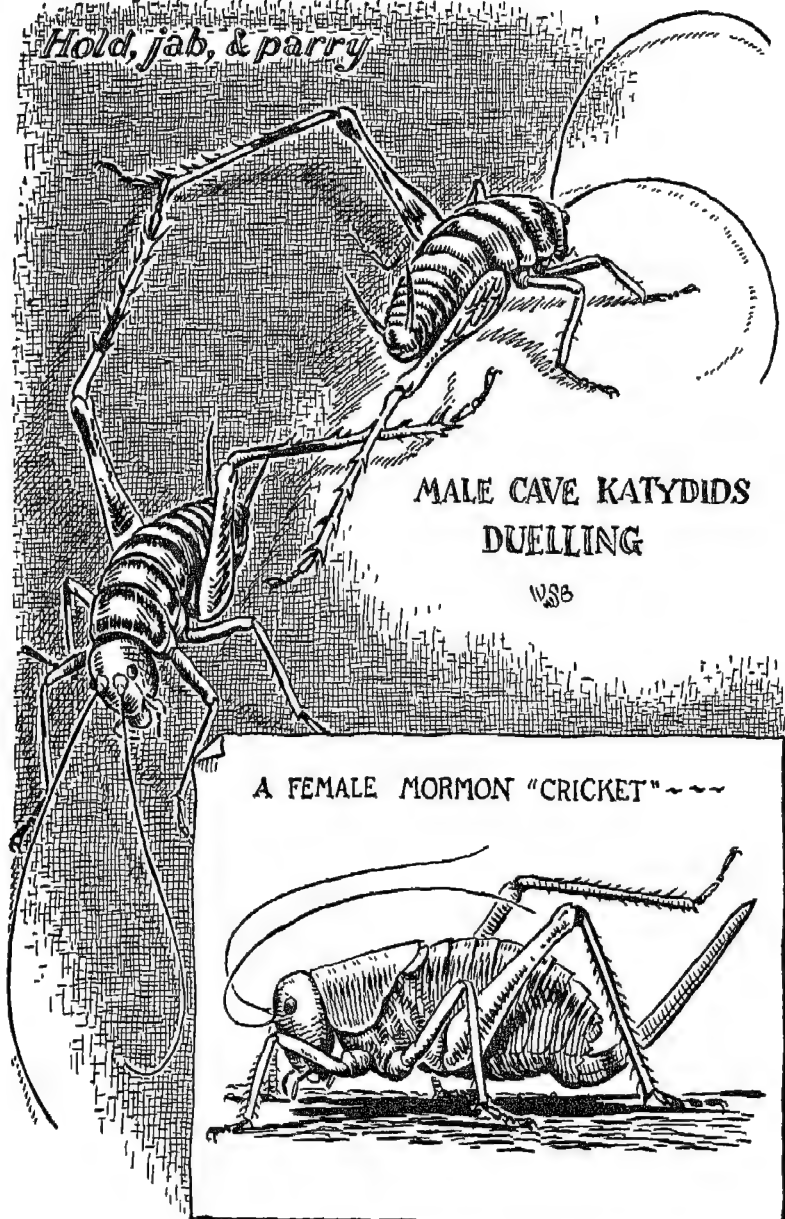
Hold, jab, & parry
MALE CAVE KATYDIDS
DUELLING
WSB
A FEMALE MORMON "CRICKET"
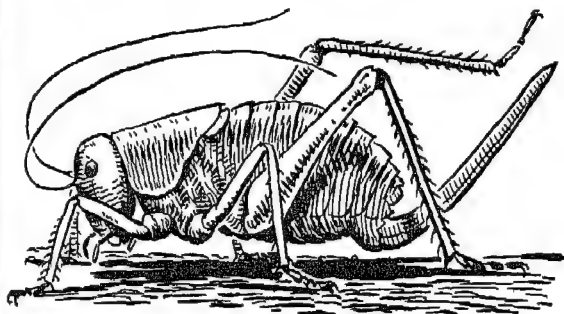
opponent" is a rule observed in reverse in their style of boxing.

They do a lot of holding too, each gripping one of his rival's hind legs in his own rear claws while trying to shake his other leg free from the rival's grip, to land another blow. Often, while holding and watching for the slightest weakening of the other's grip, they back closer and closer together till their great legs are spread, it would seem, to the breaking point.

But though they have fought so fiercely, on the ground, up the walls, and upside down on the ceiling of the cage almost every day for three full months, not one has suffered any injury as far as I can see. It seems to be almost a sport with these energetic insects, serious though their rivalries may be. I am inclined to think that to really do each other in, a battle jaw to jaw would be the thing. And evidently none of them wishes to take this risk unless at an instant of surprise when, as I say, only the surpriser is willing, the surprised always leaping out of the way.

I think these cave-katydids live quite happily in their cage. By nature they prefer enclosures and never try to get through the wires as grasshoppers, needing the great open spaces, will do to their dying day. With plenty of crannies in which to hide, room to chase each

other, and lots to eat they are as healthy now as they were way back in June.

Being wingless, they are mute. And there is not the least hint of an ear on their forward shins where other katydids and crickets have them. Yet this may not mean that they are deaf. For while good reception on the radio does not interest them, they are shocked and scared by static. So, whereas they may fail to notice certain kinds of sounds, they keenly *feel* some others, though with what I cannot say. Perhaps their very long feelers, often called antennae, are actually aerials of a sort.

When nights are cool or cold, they gather on the ceiling of their sleeping box where the day's heat lingers longest, and where crowding conserves their bodies' warmth to some extent. They don't do this out of comradely concern for one another's welfare; each is acting on its own behalf exclusively. This brings them all into the same, the warmest corner, where they settle down only after much pushing and unceremonious shoving. The males may do a bit of spurring and sparring till finally all succumb to slumber. So they remain until the rising temperature next morning thaws them into another day's activity.

Out on the open plains west of the Mississippi are

various brown ground-loving katydids, wingless or nearly so, and much like cave-katydids in most respects. But they are great multipliers and, as if grasshopper plagues were not enough to drive the farmers crazy, these related insects, usually called Coulée
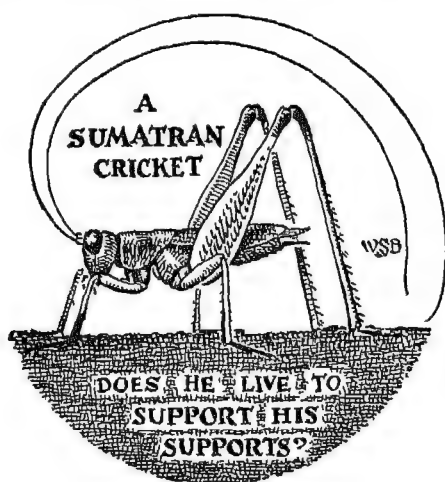
crickets and Mormon crickets, sometimes do tremendous damage to the crops. In 1936, in Utah, vegetable farmers borrowed 84,000 turkeys from poultry farmers during a "cricket" plague. The big birds gobbled up the invading insects, saving the crops and returning to their owners all fattened up for market. Does the old-time phrase about killing two birds with one stone apply here? It was 84,000 birds and billions of "crickets."

7

CRICKETS IN PARTICULAR

SOME of the crickets, properly so-called, look quite a lot like some kinds of katydids and are their nearest relatives. Tree crickets have a katydidly look with their long feelers, egg-placers, and very long legs. But whereas katydid wings overlap a little just behind the shoulders, they lie otherwise along the sides of the body, only touching at their upper edges over most of the back. Cricket wings may cover the sides somewhat, but they overlap and lie flatly one upon the other for their entire length. Among the many kinds there are crickets with big wings, smaller wings, and no wings at all.

Crickets lay their eggs in as great a variety of places as do katydids. Tree crickets use the bark or pithy stems of the plants which they inhabit. Their egg-placers have a saw edge at the end for cutting into the tough material. Field crickets punch holes in the earth with their awl-like egg-placers. And mole-crickets lay

their eggs in rooms hollowed out in their burrows underground.

Though katydids make much of the nighttime racket, crickets, as our ears feel it, make the more melodious noises. Not that it matters to the insects how it all sounds to us. It used to be asserted that because only male grasshoppers, katydids, and crickets could produce sounds, the sounds were made for the sole purpose of enchanting females.

But when I see my favorite field cricket making his morning rounds, touching this and that with his feelers, tickling a sleepy grasshopper till it jumps, cleaning up a bit, nibbling a little food, playing happy-sounding music all the while, I don't believe his feelings are romantic.

When the female comes out of her cardboard sleeping box, he greets her with some extra fine fiddling. But he may work up to such a pitch as to be almost speechless, his wings working feverishly but making only a dry rustling sound with now and then a feeble squeak. Perhaps, however, there are some lovely sounds she hears but which my human hearing fails to gather, some notes especially for her.

He almost always turns his back to play. I find that he sounds twice as loud facing away as facing toward

me. His raised wings amplify the sound like the flare of a megaphone.

He delights to fiddle in the outer half of a safety match box, increasing his volume tremendously, as some of us enjoy shouting in an echoing underpass. He seems to feel that the little half-a-box belongs to him, for he will tolerate the presence of no other insect in it. There are several grasshoppers in his cage which have made the mistake of crawling into that box. They weren't crawling when they left it.

The male tree and bush crickets have something more than just music with which to charm the females. On the back of each, beneath his wings, is a basin-like depression containing a sweet liquid. The females dote on this, and though they may have eaten nectar-filled aphids half the night, a whole dish of cricket candy is still irresistible.

The playing of his honeyed notes may not always be intended to attract a female, but certainly it serves to tell her where he is in the darkness, and at the same time, because his wings are always raised high in playing, she can help herself to some of his sweets. But a fiddling bush cricket male has been observed to act rather bothered by the arrival of a female with her everlasting sweet tooth. He edged away as though it

was to him a nuisance that he couldn't get his wings up to play once in a while without some female coming around. As with my field cricket, a bush or tree cricket may make music for its own sake sometimes, or just because he feels all right.

The temperature has a lot to do with how they feel and how and when they fiddle. The ghostly pale snowy tree cricket is called the temperature cricket too, because by counting the number of notes he makes per minute you can figure within a few degrees how warm or cool it is. At 63° he does 100 chirps per minute, working faster with more heat or slowing down with less.

This musician works on the night shift mostly. But when I light a fire in my study stove in the chill of a mountain morning, and sit at the desk with my outdoor clothes still on, I can tell when the thermometer reaches 64° without even looking up from my work. My faithful field cricket starts his first scrapy tuning up almost exactly at that point every day. At 66° he is going "full organ" and I remove my coat and cap.

As the room becomes still warmer, it seems as though he were using a sustaining pedal. His notes, instead of each ending as he begins another, seem to persist and collect and pile up till the place is crammed to burst-

BUSH CRICKET CANDY
SNOWY TREE OR
THERMOMETER CRICKET
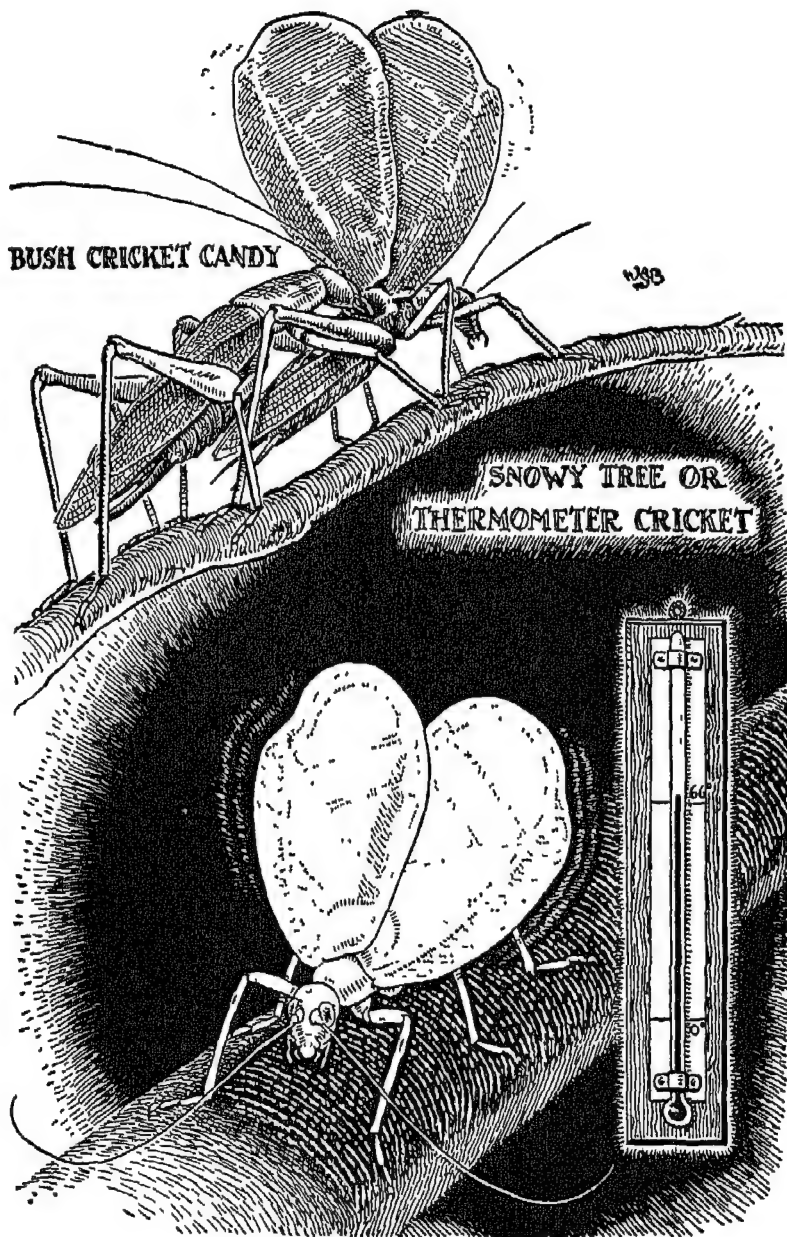
ing with them. Then if the day is coming on fair and sunny, I put the cage outdoors and try to collect my wits once more.

There are other smaller kinds of field crickets, but this kind, partly because of its large size—the body alone is one inch long—makes a charming pet. Crickets are kept as pets in various parts of the world, especially in Asia. People take them along and hang their cages in the trees to sing for them at picnics. In the Dutch East Indies the natives bet on cricket fights. Two males meet between their respective bamboo boxes. The one that pushes or chases the other back into his box first wins the bout. Seldom do the contestants really harm each other.

But there is no female present at such fights to egg the battlers on. My field cricket has a big black beautiful wife. One day, just to see how he would act, I put another male into the cage. Instantly he flew into a rage and rushed at the intruder. Fiddling furiously, jaws agape, he came close to the other male, holding fast to the floor with all his claws, but tensing all his leg muscles so that he swayed in angry jerks forward and back and from side to side. He became a veritable jitterbug, dancing all over without moving out of his tracks.

Almost as though embarrassed by the scene, and certainly bothered by such a cricket cursing, the newcomer kept moving away, only to be followed and threatened by the furious war dance again and again. Things quieted down after a while, but the irate husband was actually anything but peaceful in his heart. Though I was not a witness, he must have fought and killed his hated rival one dark night, for the following morning I found only the latter half of that unhappy insect lying on the cage floor amongst other edibles. For it was also evident that the husband and his wife had had a supper after the battle.

Though very jealous of possible attentions to his wife, my cricket has shown a peculiar interest in another female insect, not a cricket. There was a pair of red-legged locusts in the cage for some time, and he often dashed threateningly at the male grasshopper, or walked up and put his forehead against the grasshopper's forehead and pushed him backward like a butting bull. At other times he simply shouldered him out of the way. But he always sidled gently up to the female grasshopper, edging in as close as he could, standing then beside her, playing his feelers over her and giving short slight chirps.

Once he placed his forehead against hers and once

against a slant-faced locust female's, but unlike his treatment of the male red-leg, he didn't push them around, just stood there apparently gazing into their glassy compound eyes. He inspects every grasshopper I introduce into the cage and seems to delight in tickling them with his feelers till they jump, while always walking well around their powerful hind legs out of the range of a backward kick.

I keep writing "evidently, apparently, as though," because I don't really know what prompts him to do some of the things he does. But I can't help wondering what sort of ideas are busy in his brain. For more than any other insect I have ever watched, yes, even more than ants, he seems to think. Ants often appear to think a lot about the work in hand, the routine daily toil. But this cricket acts like a free adventurer who goes about with an open mind, taking his fun where he finds it and having himself quite a time. Besides a set of strong feelings, he seems to have a very lively curiosity and some ability to satisfy it. When his wife had frantically dug a depression in the dirt and was sinking her long needle egg-placer deeply into the bottom of it, he stood by, touching her with his feelers, seemingly as interested as a human bystander watching someone using a pneumatic drill. Maybe he didn't understand

what was taking place at all, but I'll wager he knew as much about it as some people do who watch men work with modern machinery.

He would go away and come back to stand chirping rather softly, maybe not sympathetically, perhaps just speculatively. When she finally finished her work and crawled up the wall, he stepped into the dirt box, wings raised as if to fiddle. But he didn't fiddle and yet he kept his wings up as though forgetting to lower them, so interested did he become in the dirt where she had been. Perhaps he was only interested in the scent of the slight amount of glue she left in the ground. It would be humanizing an insect to claim that he was aware that he had become a father, or that knowing this would matter to him. And yet, who knows? My brain is too different from his for me ever to know just what was in his mind. After a few moments he followed his wife up the wall and began befiddling her very gaily.

He appeared to take account of his wife's activities and act accordingly on another occasion. They were eating on the opposite ends of a section of green string bean pod as it lay upon the floor. Presently his wife extracted a small bean from the pod and carried it quickly into her sleeping box to eat. Immediately he

hurried after and put his head in her door. She backed him out. Twice more he tried. The third time she emerged minus any sign of the bean and walked away. In he scurried and stayed for some time. I couldn't see him but it seemed certain that he was either enjoying a portion she had left or looking long, if futilely, for what she didn't leave.

These crickets don't spit when you pick them up. They are neat and tidy, sprucing up several times a day and doubtless during the night as well. Feelers are treated as katydids treat theirs. The sides of the body are rubbed with the hind legs moving from front to back. The two tail feelers are cleaned thus also. The chest is scraped by walking with it held against the floor, "chin" up, the underside of the abdomen being dragged the same way afterward. By throwing the hind leg way forward it can be licked from knee to end claws. And a surprising portion of the wings can be reached with the mouth by bringing them forward and laying the ends on the floor, one at a time.

Common from Canada to Patagonia, this big black cricket is not the kind Dickens wrote about in England. But it is likewise a very cheerful cricket to have on the hearth, unless it has only recently acquired

A BLACK FIELD CRICKET WIFE
FLIRTING ?
A JEALOUS HUSBAND
A SUSPECTED RIVAL
WASHING WING,
FORE THIGH,
& HIND FOOT
SCRAPING ABDOMEN
AND THORAX
WSB
CLEANING FEELER
FORE SHIN,
&REAR SHIN
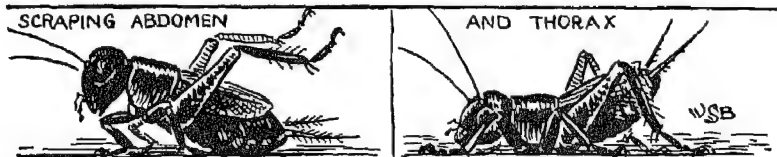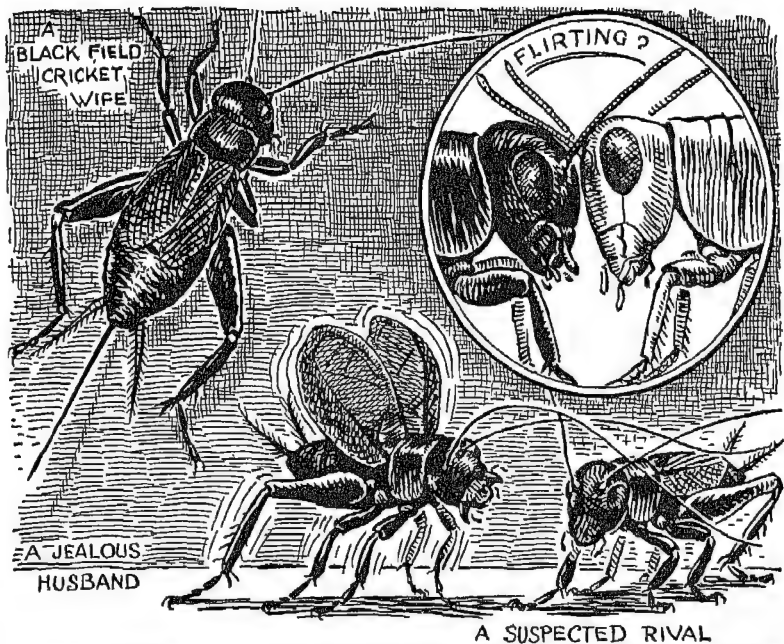
wings, its musical instrument. In such a case its efforts will be scrapy and of very poor tone at first, as is too true as well of human novices on the violin. But in a few days the tone and volume will have improved tremendously, and you can enjoy the truly cheerful quality it has taken on. Coming out from behind the woodbox as your cricket always will in the evening, it walks fiddling across the floor, almost as unafraid of you as the dog drowsing before the fire, secure in your friendship.

Friendship for crickets ends when too many enter our homes. Dickens wrote of a hearth that had one cricket. But sometimes they increase so in the walls of English houses that a person can scarcely sleep for their nightly chirping, and has a battle royal on his or her hands keeping them out of the food and furnishings. They can be as bad a pest as their cousins the roaches, except that no horrid aroma collects where they have been, and they do "sing" cheerfully, if too much at times.

When our field crickets come indoors in numbers, they forget the hearth and roam all over the house, getting into the food if they can and eating holes in carpets and curtains and everything made of cloth. So on the whole it is better that they stay in the fields

and use their own burrows and go on eating grass and such good food.

Field crickets use burrows for the first half of the summer, living alone or at most in pairs. Later they
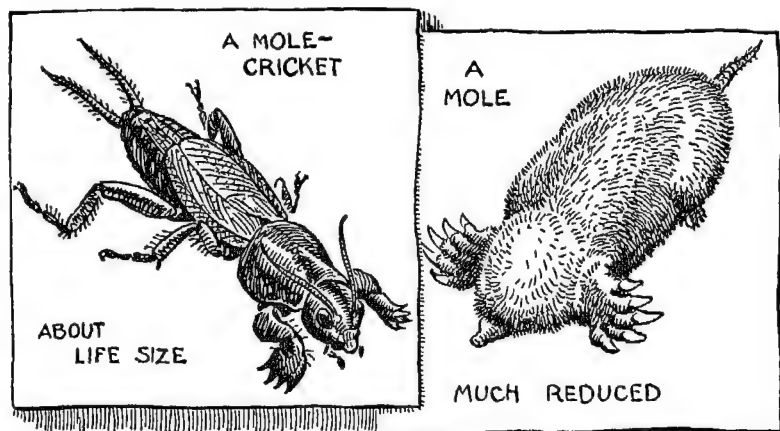
become very socially inclined and, except when they go in for wholesale house invasion, congregate in large numbers under the rubble of the fields and the rubbish of town dumps and such cranny-providing places. Frost ends their social season and most of their lives.

Whereas field crickets dig their temporary burrows with ordinary footgear, mole crickets are especially equipped for a life lived mostly underground and make themselves galleries as good as those of the much praised ant. It is believed that in these excellent quar-

ters they live for more than just one season. Their eggs are laid in chambers which open on the galleries and since no drilling egg-placer is needed to get them underground, mole crickets do not have them.

All the important digging is done with apparatus at the other end. Here, as with their mammal namesake, is a remarkable development of the thorax, forelegs, and feet for gouging a passage through the earth by a sort of breast stroke motion. With this powerful equipment the mole cricket fairly swims along beneath the surface of the ground, humping it up as it goes very much as does the mole itself.

With strong projecting jaws it snips off roots that stretch across its course, and if the course happens to be through a garden, that is just too bad for the gardener. Its feelers are very stunted, as befits an insect of its habits. But the two tail-like members at its latter end are extra large and sensitive. They are useful as feelers when the mole cricket wants to back through the darkness of its diggings.

A good thing, from a gardener's point of view, is the fact that mole crickets prefer soil that is generally too damp for gardening. They are most common near swamps and ponds. Here, unseen, fiddling from just within their burrow openings, they are supposed by

most human hearers to be peeping frogs.

And here we must leave the crickets to consider, for a little space, certain unwelcome comrades of life on shipboard and in town.

8

THE ROACHES

IT IS easy enough to give the grasshopper his due. One gladly says a good word for the katydid. And the cricket is a creature to be almost fond of out-of-doors, and to enjoy even more indoors if it is a blessing that comes singly. But just one cockroach is too many to delight us in our homes.

For no matter how often the cockroach cleans its feet and feelers, we may be reasonably sure that before it crawled into the cellar and came sneaking up through a thin crack between the water-pipes and floor it was making merry in some vile garbage dump or gutter. And now it wants the privilege of promenading on the pantry shelves and feasting in the cookie jar when darkness falls. Turn on the light and the thieving villain flees, drooling in its fear a brown saliva, the horrid scent of which remains, the calling card of a most unwelcome visitor.

Driven from the kitchen, it will go to the study per-

haps, and gnaw the bindings of your books to get at the glue. Scrunching its flattest it will even devour the paste that holds the paper to the wall. Liking water-

colors though not appreciating art, it will eat the colors from your pictures and from your unclosed painting box.
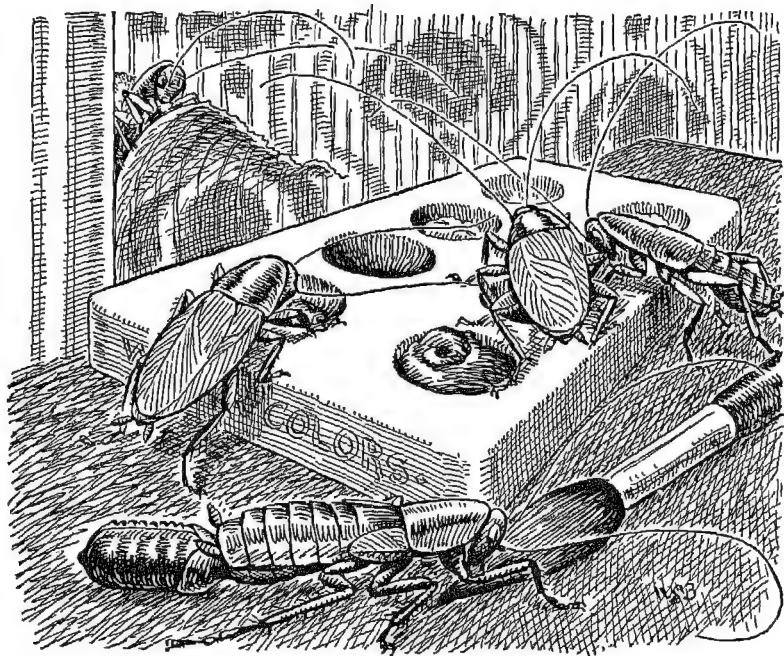
The cockroach frequently does wash its feet; though, bathed in its own unsavory saliva, they can be clean only from its point of view and not from ours. Yet

we can take advantage of its spruce-up habit to rid the house of its unlovely presence. If we scatter poisonous powders in the cracks where it crawls, some will collect on its feet. When next they are washed, enough poison will get into its mouth to kill it.

Splendid! But there are always others where it came from and so, in localities where cockroaches are common, defense against them must be continuous. Eternal vigilance is the price of purity, as it is of almost anything we cherish. Yet unless all help in the defense, some who have been the "have-nots" will become the "haves" and vice versa.

When a New York restaurant attacked its pest of roaches with poison chemicals, many were seen to leave by the front door, walk past six feet of masonry, and enter the restaurant next door with all the people. Of course, Old Mother Nature cared just as much for those roaches as for the customers. It wouldn't have mattered to her which fared the better, the insects or the humans. That was something for the restaurant men to worry about, especially the one who wasn't fumigating.

Despite our strong dislike for roaches, we must admire their power to persist. With no end of insect, reptile, bird, and mammal enemies after them for millions

of years, and with every human hand against them since caves became mankind's first stationary homes, they still are with us in far too thriving a condition. Wherever we have stores of food, sooner or later they are likely to turn up.

Starting in the tropics, they have gone aboard ships in cargoes of provisions and thus traveled to and transplanted themselves in every land where people provide the food and warmth they want. Slaughterhouses, breweries, restaurants, and home kitchens are especially to their liking. And like those other undesirable aliens, the rats, they make a good thing of a life at sea. I used to gaze with horror at hordes of roaches that lived in the warm furnace room and dined in the steamy kitchen of a certain boarding school. But after I grew up and went to sea, I found that they were nothing as compared with the roaches which, given half a chance, will thrive on ships, especially in warm climates.

A sea-cook friend of mine, working on a small West Indies schooner, sometimes had a chance while the dough was rising to take a nap. But if he lay down for only a few minutes, often as not he would wake with his face smarting terribly. On looking into a mirror he found that roaches, eating the galley grease from

his face, had taken the outer layer of his hide as well. And each night they chewed the calluses on the bare feet of sleeping members of the crew. Things get pretty bad on vessels whose owners do not fumigate.

Always lurking where there is unfailing warmth, roaches can lay their eggs the year around, and do.
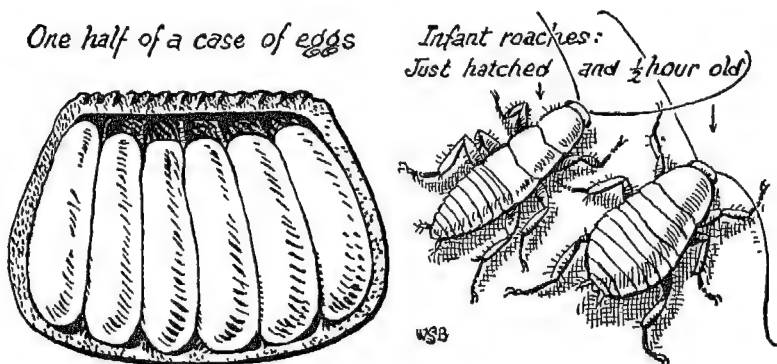
But, unlike most rapid multipliers of the insect world, roaches have long lives, several years perhaps, so that their hatch rate greatly exceeds their death rate. Thus their population increases enormously unless something drastic is done about it.

There are more than a thousand different kinds of roaches, mostly brown or blackish, though there are green or striped or spotted kinds too. Some have eggs that hatch just before being laid so that the young appear to be born. But most kinds of cockroach mothers

carry for a time what looks like a bulging handbag, actually a horny egg case or capsule attached to the end of the body. In it are between one and two dozen eggs.

When the time is ripe, she leaves this portable incubator in some warm, damp, cozy crevice where the young ones will get on nicely when they hatch. On emerging from the eggs, they find themselves facing the "zipper" edge of the case with little chance of facing any other way so closely are they packed, each in its own groove. The only way to go is forward, in which they are assisted by small backward-pointing spines projecting from their hatching-skins. Probably all that is needed to break the cement that seals the side of the case they are pointed toward is a little push, perhaps from several at the same time. Some say that the first thing they do is drool, which is one of the first things they do as adults when in a tight spot. Their saliva is supposed to melt the cement. But this has not been proved, as far as I can find out. Personally I have never been inside a cockroach capsule just as the babies were about to break out of it. But it does open a wee mite, maybe a sixteenth of an inch or less, and out they come, leaving their hatching-skins behind as they crawl through their first thin crack. Thereafter the wide

world is theirs, with its limitless scavenging possibilities.

Most roaches have wings, though the females of some kinds aren't so provided. Roaches living always
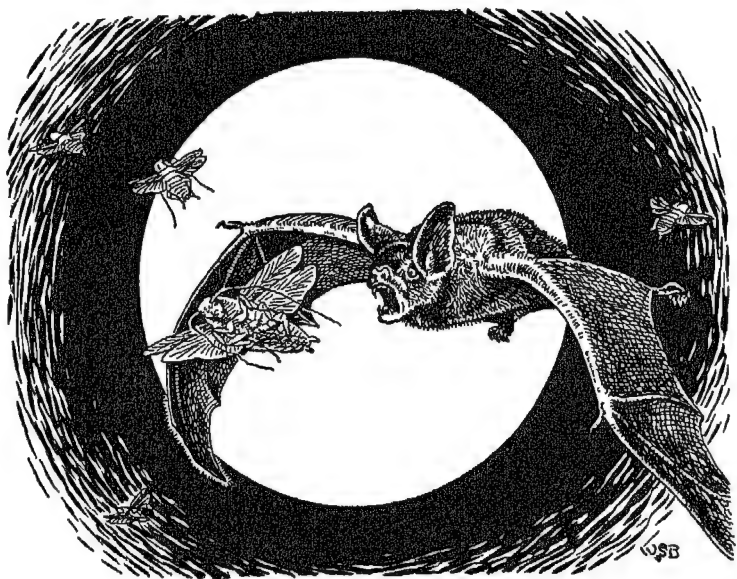
indoors in cooler climates seldom use their wings, except as slippery surfaces to aid in slithering through the shallowest cracks, aided also by great ability to flatten their bodies. But in the tropics, where some are four inches long, they fly at night, entering lighted houses and often pursued by bats. Several kinds of tropical roaches belong to the great insect orchestra.

Some, by rubbing one part of the thorax on another part or on the bases of their upper wings, make a faint little noise, sometimes known as drumming. And in Madagascar, a large kind of roach can make a grunting sound by suddenly forcing air out through the breathing holes along its sides. What the roaches hear with is not known; perhaps part of their long antennae, and possibly the hairs on their legs and bodies, are sensitive to sounds.

The ant in Aesop's fable may have turned the grasshopper from its door. But some tropical parasol ants actually invite the company of certain stunted cousins of the grasshopper, a tiny kind of cockroach, into their homes. These roaches love the oils exuded from the armor of the ants, and the ants love to be licked. So they go through their galleries with minute roaches riding pick-a-back. On the other hand, another kind of ant kills bigger roaches and carries them home for food, if it finds them feeding in the jungle flowers. This is a good thing for orchids, the roaches having the habit of eating the roots of these gorgeous air plants.

The Mexicans, whose language is so beautiful, don't like roaches any better than the rest of us. But they have a song about them which you may have heard. How much more musical "Cucaracha" sounds! Only

in Spanish can we find the heart to sing of the craven cockroach.

It rightly has a hang-dog look, its chin forever on its chest, its eyes cast down. Its thorax all but covers
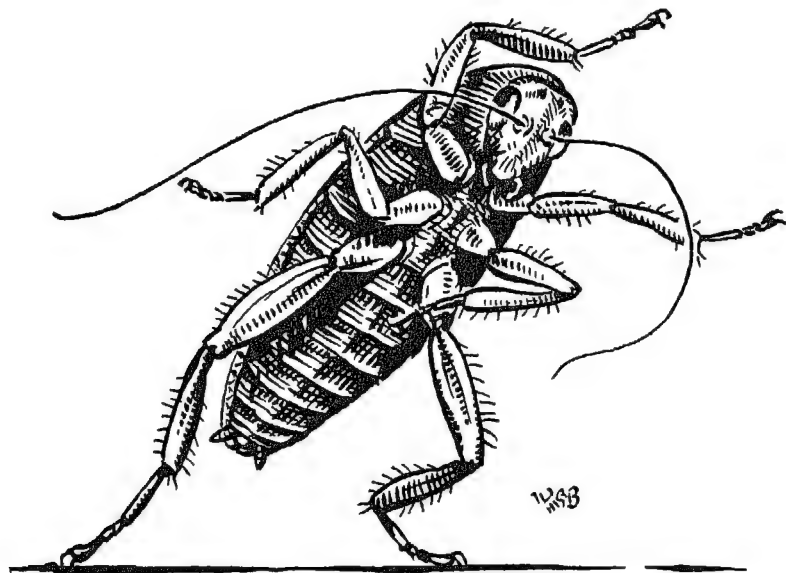
its head, like a cringing man with hat pulled down, collar turned up, and shoulders raised to fend off the crushing blow he perpetually expects. We cannot even feel enthusiasm for the wretched roaches by reminding ourselves that their ancestors were also ancestors of termites, whose great insect nations, with their workers, soldiers, queens, and even kings, rival those in the

wonder world of ants. For are not termites our tormentors too, invading and destroying our homes?

The Oriental roach, which is common in the Occident as well, is said to prey on bed-bugs. The horrific-looking centipede in turn devours roaches. But none of these indoor creatures can be considered with a happy heart. Each is about as undesirable as the ones it preys upon. The cure is hardly better than the misery.

Shall we go outdoors again and get a breath of good fresh air, with walking-sticks?

9

WALKING-STICKS

NOW a walking-stick walking by itself would be a vision unbelievable. Seeing a cane tripping nimbly up the street, with no human hand to hold it, would make us wonder if we were dreaming or just going crazy. If only a little three inch stick lying by a bush should rise an inch from the ground supported by its tiny twigs, move toward the bush, climb it, and place itself back on the branch from which it fell, we would have the same inability to believe our eyes.

Yet this, or some scene like it, is what we seem to witness the first time we see a stick-insect, or walking-stick. Because, until it moves, we are almost certain not to notice it at all. Not only does it look exactly like the real twigs on the branch in shape, size, and color, but it acts like one for hours at a time during daylight. Pressing against the branch with its latter end and leaning out a little with the other, it extends

its forelegs and feelers straight before it, appearing thus to taper off in true twig style.

The forelegs are curved at the end next the body to fit snugly around the very small head so that they
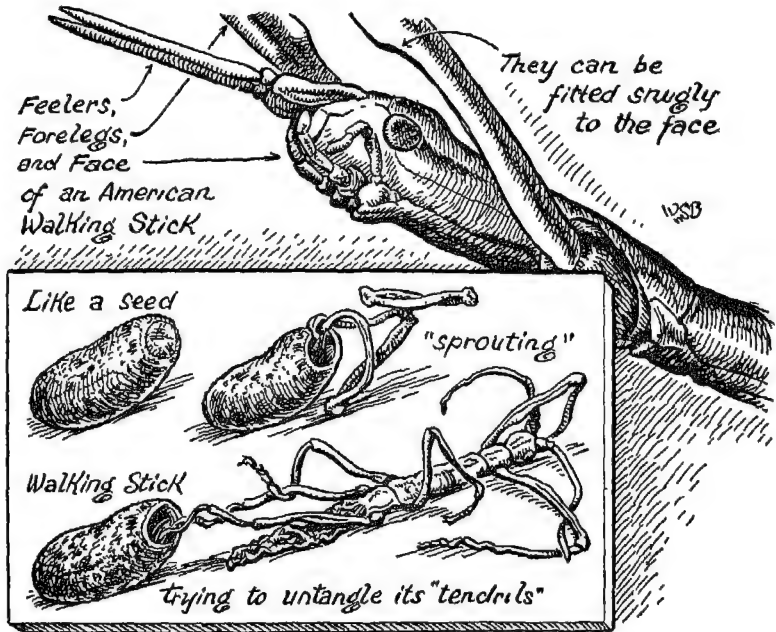
meet in front of the face and continue outward together. The face seems scarcely big enough for all its features, the mouth with its many parts (lips, tongue, tasting feelers, and jaws), plus the forehead feelers and the compound eyes. Yet everything is there and without destroying the wondrous twiggy outline of

the walking-stick disguise.

Even before this insect hatches it is already imitating plants. There is something plant-like in the very way the eggs are laid. For the female in the tree lets her eggs drop hit-or-miss, with no more concern for their future than a plant has, dropping seeds. The eggs themselves look so much like seeds that trained botanists have collected them by mistake. Since walking-sticks are numerous only every other year, it is believed that the eggs, like certain seeds, lie under the leaves for two winters before bursting open to free new lives into the world.

In the very act of hatching, the baby stick-insect is first like a sprout, then a tangled tendril, and finally, straightening out its kinks and crumples, a twig colored green or brown in the best of twig traditions.

If, before the insect is full grown, it loses one of its members, it can sprout another where the old one was, a power more common in plants than animals. Starting late, the new leg will not have time to get as large as the others before the last molt ends all growing. It will be smaller and may be bent somewhat, but better than an empty socket on the insect's side.

In spite of all this marvelous mimicry, the walking-stick still fails to feel entirely secure, and tries one

more trick when considering itself in danger. If a bird alights, shaking the branch a trifle where the walking-stick is fastened, it "breaks off" and falls to the ground just as a dead and brittle twig would do. Rapping the branches of trees in a big walking-stick year brings hundreds of them down, sounding as they hit the rubbish of the forest floor like a shower of hail. With eggs falling from countless females, a similar sound is created.

There have been walking-stick plagues in the eastern half of this country when the twigs of oak, chestnut, and maple trees were stripped as bare of leaves as the walking-sticks themselves. On the other hand, certain intimate tropical relatives of walking-sticks mimic leaves instead of twigs. The bodies, wings, and legs of walking-leaves or leaf insects are ironed out flat in perfect pale green leaf designs. It must be equally astonishing to see a cluster of leaves climbing about as to watch a walking-stick on the move.

A large walking-stick of New Guinea is heavy-set and very rough and spiny like the bark of the trees it prefers to feed upon. It is six inches long. But the largest walking-stick, and perhaps the largest of all insects, is an African walking-stick with a ten and one-half inch body, a total length of sixteen inches with
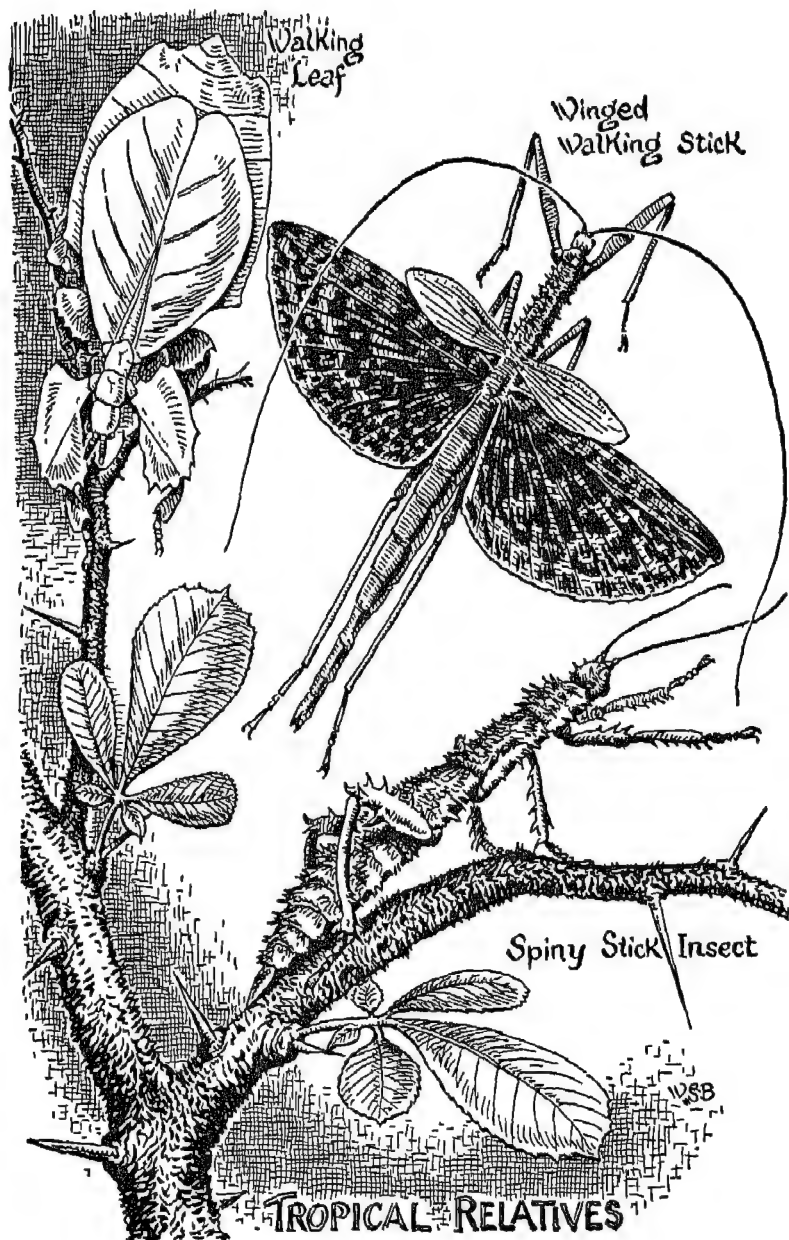
Walking Leaf
Winged Walking Stick
Spiny Stick Insect
WSB
TROPICAL RELATIVES

forelegs extended, and a wingspread of nine inches from tip to tip. Another kind, eight inches long, found in Brazil, is called the stinking-stick insect because, as a final defense, it will spray an acrid stinging liquid at its enemies from openings on the sides of its thorax. This smells so horribly that the hungry enemy loses all appetite and is only too glad to get away from there. Several kinds of walking-sticks in our southern states can defend themselves thus also, one squirting a milky spray for a foot and a half or more that burns your skin and painfully stings your eyes. Such walking-sticks are the skunks of the insect world.

Our three-inch northern walking-sticks have no wings, but many tropical kinds have very good ones which, like those of our band-winged locusts, only display their beauty when the insects fly.

There remains only one branch more of the grasshopper's family tree. Its members are those terrible relatives which, while posing so piously, live entirely by murder, not being safe even from each other.

10

THE PRAYING MANTISES

PRAYING MANTISES they are called, but if they were billed as a vaudeville troupe in life's continuous performance they would come on as the Murdering Mantises, the Mangling Maniacs, or maybe the Horrible Hypocrites.

Whoever named them thought he saw in their upraised forelegs the attitude of prayer. Some have called them soothsayers, which means truthtellers, because of this pious posture. But to tell the truth, for what may they be praying? Are they asking forgiveness for their many murders and at the same time petitioning for more victims? That would be hypocritical enough. For the truth is that the forelegs are not raised to pray, but to prey.

Never using these hook- and dagger-studded limbs for walking, the mantis holds them folded restfully but always ready. With weapons thus concealed, it may stealthily stalk its victim or play a waiting game,

moving nothing but its head, which can be turned on the long, neck-like thorax to look on all sides and even behind, an act no other insect can perform. With great black compound eyes held steadily on the prey until
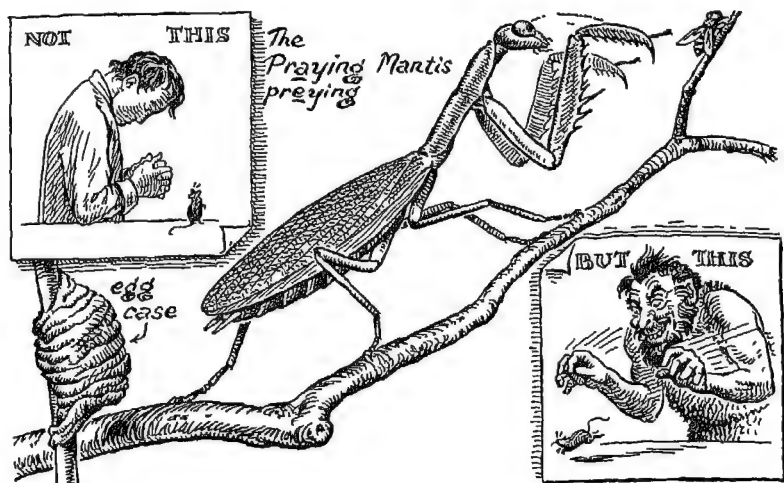
it comes into snatching range, it suddenly springs its terrible trap. The awful arms shoot out and grapple the victim, pinning it in a score of places and pulling it to the ever hungry mouth of the mantis.

Most frequently the prey is some other insect, anything from mosquitoes up to its own jumping relatives, the grasshoppers and katydids. It quickly bites off the heads of these kickers to stop their disturbing struggles and make the eating easier.

Caterpillars are consumed entirely, but the harder portions of jointed insects are discarded. Spiders, though possessing poison fangs, are very much afraid of mantises and are liable to lose their lives when they do attempt to tangle with them. The mantises of Europe and Asia and of our southern states, and most of those of tropical America, are green or brown. But some of the tropical kinds wear the hues of orchids, in which they lurk to trap the other insects visiting these gorgeous flowers. Sometimes even small birds, also seeking insects there, are captured and devoured.

Yet a small mouse has been seen to box with a mantis, making swift swipes and receiving some scratches as the insect struck back, but finally going into a clinch and killing it with a bite back of the head. And the mantis is harmless to humans. In fact it is very helpful to us, destroying a multitude of insects which do damage to our crops.

But one mantis can be very harmful to another. The female is very likely to eat the slightly smaller male when the mating is over. Poor creature, at least he helps a little to nourish the eggs that she will lay. She places as many as one hundred of them on some twig, surrounded by a hardening froth of glue.

Sometimes a certain kind of wasp also lays in the

froth before it sets, and the wasp grubs grow by eating the mantis' eggs. There is a kind of fly which pierces the hardened froth with a sting-like egg-placer, and its maggots fatten as the wasp grubs do. Ants eat infant mantises as they hatch, or growing mantises if they find them eating aphids, the ants' nectar cows. They kill the poachers and carry them off to store for food. Birds and monkeys also help themselves to young and growing mantises.

But though it has some enemies to fear, the mature mantis remains among the most terrible of insect hobgoblins. The Devil's Race Horse is another name for it, but in the insect world it rather plays the part of the very Old Boy himself.

Cannot you hear the fiendish laughter as the Arch Mantis of all mantises says to a trembling Aesop,

"You're a fabulating sissy! *I'm* the one who can put a grasshopper in its place!"

But about praying mantises, as with grasshoppers and ants, it's very probable that poor old Aesop never really knew.

The
End!
WSB